

पंच तत्त्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण



पंचतत्त्वों द्वारा— संपूर्ण रोगों का निवारण



लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१५

मूल्य : ९.०० रुपये

भूमिका

सृष्टि की समस्त वस्तुओं का निर्माण, परिवर्तन, विकास और विनाश पंचतत्त्वों के रासायनिक परमाणुओं द्वारा होता है। जिस वस्तु की जैसी अच्छी और बुरी स्थिति है, वह इन तत्त्वों की स्थिति के कारण ही है। अन्य सभी वस्तुओं की भाँति मानव शरीर भी पंचतत्त्वों द्वारा बना हुआ है और उसका स्वस्थ-अस्वस्थ रहना भी उन्हीं के ऊपर निर्भर है।

मनुष्य जाति आज शारीरिक अव्यवस्थाओं, पीड़ाओं, अभावों एवं विकृतियों से बहुत दुःखी है। जिसे देखिए वही बीमारी और कमजोरी के कारण दुःख पा रहा है। स्वास्थ्य की समस्या जीवन की एक प्रमुख समस्या बन गई है। उसे हल करने के लिए अन्य इधर-उधर के आश्रय ढूँढ़ने की अपेक्षा उन्हीं पंचतत्त्वों से सहारा लेना अधिक उपयोगी है, जिनके द्वारा कि शरीर का निर्माण हुआ है।

पंचतत्त्वों द्वारा रोग-निवारण का कार्य बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। ऋषि-मुनि इन्हीं के द्वारा शारीरिक विकारों से बचे रहते थे। जब रोगों का आक्रमण होता था, तब इन्हीं तत्त्वों की सहायता से उनका निवारण कर लेते थे। आज पूर्वीय और पाश्चात्य विद्वानों की अनेकों शोधों के उपरान्त तत्त्व चिकित्सा के विभिन्न रूप सामने आये हैं। इन्हें पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। यह सभी उपचार प्राकृतिक होने के कारण अधिक आशुफलप्रद और हानि रहित हैं। प्राकृतिक चिकित्साप्रेमियों के लिए यह पुस्तक लाभप्रद होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

पंचतत्त्वों द्वारा—

संपूर्ण रोगों का निवारण

यह सृष्टि पंचतत्त्वों से बनी हुई है। प्राणियों के शरीर भी इन तत्त्वों के ही बने हुए हैं। मिट्टी, पानी, हवा, आग और आकाश इन पाँच तत्त्वों का ही सब कुछ संसार है। जितनी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं या इंद्रियों द्वारा अनुभव में आती हैं, उन सबकी उत्पत्ति पंचतत्त्वों द्वारा हुई है। वस्तुओं का परिवर्तन, उत्पत्ति, विकास तथा विनाश इन तत्त्वों की मात्रा में परिवर्तन आने से ही होता है।

सृष्टि के परमाणु पंचतत्त्वों से बने हैं और उन्हीं की तन्मात्राओं से इन परमाणुओं में हलचल जारी रहती है। भौतिक जगत् की समस्त गतिविधि का आधार इन पंचतत्त्वों की गतिशीलता ही है।

भूमंडल के विभिन्न भागों में जो विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं, उनके मूल में तत्त्वों का परिवर्तन ही काम करता है। ध्रुव प्रदेशों में शीत की अधिकता है, सदा बर्फ जमी रहती है, वनस्पतियाँ नहीं उगतीं, कुछ गिने-चुने शीत प्रकृति के जीव ही वहाँ रहते हैं, इस विचित्रता का कारण प्रदेश में अग्नितत्त्व की कमी होना है। दक्षिण अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में अत्यंत गर्मी पड़ती है, उन प्रदेशों में पृथ्वी तवे के समान जलती है। दिशाएँ आग उगलती रहती हैं, सूर्य की प्रचंड किरणें सरस चीजों की सरसता नष्ट करके उन्हें अपनी ज्वाला में भूनती रहती हैं। यह प्रदेश भी अपने ढंग के निराले हैं। ध्रुव देश तथा विषुवत् रेखा के समीपवर्ती प्रदेशों में जो असाधारण अंतर है, उसका कारण अग्नितत्त्व की न्यूनता और अधिकता है। अरब में आने वाले तूफान वहाँ वायुतत्त्व की अधिकता प्रकट करते हैं। आसाम एवं पूर्वी द्वीप समूहों में वर्षा की

अधिकता जलतत्त्वों की अधिकता का सूचक है। घने जंगल, दलदल, विचित्र पौधे और जीव-जंतु, खनिज पदार्थ आदि विभिन्नताओं का कारण उन प्रदेशों की तात्त्विक न्यूनाधिकता ही है।

यह प्रसिद्ध है कि जलवायु का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। योरोपियन ठंडे मुल्कों का रंग-रूप, कद, स्वास्थ्य; अफ्रीका निवासियों के रंग-रूप और स्वास्थ्य से सर्वथा भिन्न होता है। पंजाबी, कश्मीरी, बंगाली और मद्रासी लोगों के शरीर एवं स्वास्थ्य की भिन्नता प्रत्यक्ष है। यह जलवायु का अंतर है। किन्हीं स्थानों में मलेरिया, पीला बुखार, पेचिस, चर्मरोग, फील पाँव, कुष्ठ आदि रोगों की बाढ़-सी रहती है और किन्हीं स्थानों का जलवायु ऐसा होती है कि वहाँ जाने पर तपेदिक सरीखे कष्टसाध्य और असाध्य रोग भी अच्छे हो जाते हैं। यही बात पशुओं के संबंध में है—हिसार की गाय और निजामाबाद की गाय में जमीन आसमान का अंतर देखा जाता है। यही प्रभाव खाद्य पदार्थों पर पड़ता है।

गेहूँ, चावल, दूध, घी, मछली, चाय, सागभाजी, औषधि, वनस्पति आदि के गुण और स्वाद में प्रादेशिक अंतर के हिसाब से फर्क पड़ता है। प्रादेशिक अंतर का कारण, उन स्थानों में तत्त्वों की मात्रा की न्यूनता एवं अधिकता ही है।

शरीरों में तत्त्वों की मात्रा के अंतर के हिसाब से देह का ढाँचा और स्वभाव बनता है। पुत्र, कन्या की उत्पत्ति का आधार स्त्री-पुरुषों में तत्त्वों की न्यूनाधिकता का होना है। ऋतुओं के प्रभाव के कारण स्वास्थ्य में लगने वाले झटकों का अस्तित्व भी इसी बात पर अवलंबित है। किसी को कोई मौसम अनुकूल पड़ता है तो किसी को कोई, किसी के लिए एक वस्तु रुचिकर एवं हितकर होती है तो किसी के लिए कोई। यह बातें प्रकट करती हैं कि इन मनुष्यों में तत्त्वों की मात्रा में भिन्नता है।

रोगी होना और निरोग रहना यह भी तत्त्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। आहार-विहार की असावधानी के कारण तत्त्वों का नियत परिणाम घट-बढ़ जाता है। फलस्वरूप बीमारी खड़ी हो

जाती है। वायु की मात्रा में अंतर आ जाने से गठिया, लकवा, दर्द, कंप, अकड़न, गुल्म, हड़फूटन, नाडी विक्षेप आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अग्नितत्त्व के विकार से फोड़े-फुंसी, रक्त-पित्त, हैजा, दस्त, क्षय, स्वांस, उपदंश, वाह, खून फिसाद आदि बढ़ते हैं। जलतत्त्व की गड़बड़ी से जलोदर, पेचिश, संग्रहणी, बहुमूत्र, प्रमेह, स्वप्नदोष, सोम, प्रदर, जुकाम, खाँसी, जैसे रोग पैदा होते हैं। पृथ्वीतत्त्व बढ़ जाने से फीलपाँव, तिल्ली जिगर, रसौली, मेदवृद्धि, मोटापा आदि रोग होते हैं। आकाशतत्त्व के विकार से मूर्च्छा, मृगी, उन्माद, पागलपन, सनक, अनिद्रा, वहम, घबराहट, दुःस्वप्न, गूँगापन, बहरापन, विस्मृति आदि रोगों का आक्रमण होता है। दो, तीन या चार, पाँच तत्त्वों के मिश्रित विकारों से विकारों की मात्रा के अनुसार अनेकानेक रोग उत्पन्न होते हैं।

अग्नि की मात्रा कम हो जाय तो शीत, जुकाम, नपुंसकता, गठिया, मंदाग्नि, शिथिलता, सरीखे रोग उठ खड़े होते हैं और यदि उसकी मात्रा बढ़ जाए तो चेचक, ज्वर, फोड़े सरीखे रोगों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वों की कमी हो जाना, बढ़ जाना अथवा विकृत हो जाना रोगों का हेतु बन जाता है। शरीर पंचतत्त्वों का बना है। यदि सब तत्त्व अपनी नियत मात्रा में यथोचित रूप से रहें तो बीमारियों का कोई कारण नहीं रहता। जैसे ही इनकी उचित स्थिति में अंतर आता है वैसे ही रोगों का उद्भव होने लगता है। रसोई का स्वादिष्ट और लाभदायक होना इस बात पर निर्भर है कि उसमें पड़ने वाली चीजें नियत मात्रा में हों। चावल, दलिया, दाल, हलुआ, रोटी आदि में यदि अग्नि ज्यादा-कम लगे, पानी ज्यादा या कम पड़ जाए, नमक, चीनी, घी आदि की मात्रा बहुत कम या बहुत ज्यादा हो जाए तो वह भोजन का स्वाद, गुण और रूप बिगड़ जाता है, यही दशा शरीर की है। तत्त्वों की मात्रा में गड़बड़ी पड़ जाने से स्वास्थ्य में निश्चित रूप से खराबी आ जाती है।

जिस कारण से कोई विकार पैदा हुआ हो, उस कारण को दूर करने से वह विकार भी दूर हो जाता है। काँटा लग जाने से दर्द हो रहा हो तो उस काँटे को निकाल देने से दर्द भी बंद हो जाता है। मशीन में तेल न होने के कारण वह भारी चल रही हो और आवाज कर रही हो तो उसके कल-पुर्जों में तेल डाल देने से वह खराबी दूर हो सकती है। दीवार में से ईंट निकल जाए तो वहाँ ईंट लगानी पड़ती है और जहाँ से चूना निकल गया हो, वहाँ चूना लगा देने से मरम्मत हो जाती है। यही बात स्वास्थ्य सुधार के बारे में भी है। जिस तत्त्व की न्यूनता-अधिकता या विकृति से वह गड़बड़ी पैदा हुई हो, उसे सुधार देने से सारा संकट टल जाता है।

तत्त्व चिकित्सा का यही आधार है। पाँच तत्त्वों के बने शरीर को निरोग बनाने के लिए पंचतत्त्वों द्वारा चिकित्सा करना ही सबसे अच्छा उपाय है। इस उपाय से सुविधापूर्वक बीमारियों का निवारण हो जाता है।

मिट्टी का उपयोग

मिट्टी में विष को खींचने की अद्भुत शक्ति है। शरीर के जिस भाग को मिट्टी से बाँधा जाए, उस अंग विशेष से विष निकलकर मिट्टी में चला जाएगा। गीली मिट्टी से विषैला अंश खिंचकर मिट्टी में चला जाता है। गीली मिट्टी को शरीर के किसी रोगयुक्त अंग पर बाँध दिया जाए और फिर थोड़े समय बाद उसे खोला जाय तो उस मिट्टी में मनुष्य शरीर का विष बहुत अधिक मात्रा में मिलेगा।

इसके अतिरिक्त पोषकतत्त्व देने की भी पृथ्वी में आश्चर्यजनक क्षमता है। प्रायः सभी पदार्थों में से एक प्रकार की गंधयुक्त वाष्प निकलती रहती है। फल और पुष्पों से कौबन आदि। गैसों निकलती रहती हैं। फल और पुष्प की अपनी महक अलग ही होती है। जीव-जंतुओं के शरीरों से भी गंधयुक्त वायु

निकलती है। इसी प्रकार पृथ्वी में से भी सदैव एक प्रकार की वाष्प निकलती है। यह वाष्प बड़े अद्भुत गुणों से संपन्न होती है। पृथ्वी में बड़े अमूल्य रसायनिक तत्त्व भरे पड़े हैं। वनस्पतियाँ, औषधियाँ तथा अन्य अनेक खाद्य वस्तुएँ पृथ्वी से ही निकलती हैं। पृथ्वी के रसायनिक द्रव्य ही रूपांतर करते हुए उपयोगी पेड़-पौधों का रूप धारण करते हैं। यह महत्त्वपूर्ण तत्त्व पृथ्वी से निकलती रहने वाली वाष्प के साथ बाहर आते रहते हैं। पृथ्वी के समीप शरीर को रखने से वह वाष्प शरीर को प्राप्त होती रहती है, जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि जमीन खोदकर गुफा बना लेते थे और उसमें रहा करते थे। इससे उनके स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता था, मिट्टी उनके शरीर के दूषित पदार्थों को खींच लेती थी, साथ ही भूमि से निकलने वाली वाष्प द्वारा देह का पोषण भी होता रहता था। समाधि लगाकर निराहार रहने के लिए गुफाएँ ही सर्वोपरि उपयोगी स्थान हैं, अन्य स्थानों में इतनी सरलता और सफलता नहीं होती।

छोटे बालक जो प्रकृति के अधिक समीप हैं, पृथ्वी के महत्त्व को जानते हैं, वे भूमि पर खेलना, भूमि पर लेटना, गद्दी तकियों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं। पशुओं को देखिए, वे अपनी थकान मिटाने के लिए जमीन पर लोट लगाते हैं और लोटपोट कर पृथ्वी की पोषक शक्ति से फिर ताजगी प्राप्त कर लेते हैं। तीर्थयात्रा एवं धर्म-कार्यों के लिए नंगे पैरों चलने का विधान है। तपस्वी लोग भूमि पर शयन करते हैं। इन प्रथाओं का उद्देश्य धर्म-साधनों के नाम पर पृथ्वी की पोषकशक्ति द्वारा साधक को लाभान्वित करना ही है।

पक्के तिमंजले मकानों में रहने वालों की अपेक्षा मिट्टी की झोंपड़ियों में रहने वाले अधिक स्वस्थ रहते हैं। धरती माता के हम जितने ही समीप रहते हैं, जितने ही उसकी गोदी में खेलते हैं, उतनी ही वह प्रेमपूर्वक हमें अपनी छाती का रस पिलाती है। उस

रस को पीकर जितनी स्वस्थता और निरोगता प्राप्त होती है अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकती।

मिट्टी चूँकि काफी तादाद में और हर जगह मिलती है, इसलिये लोग उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और उसके गुणों को नहीं समझते। यदि मिट्टी का एक टुकड़ा लेकर वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उसका विश्लेषण किया जाए, तो उसमें अनेकों प्रकार के क्षार, लवण, विटामिन, खनिज, धातु, रसायनों, रत्न, रस आदि निकलेंगे। औषधियाँ कहाँ से आती हैं ? वे पृथ्वी में से ही तो निकलती हैं। जो तत्त्व औषधियों में हैं, उनके परमाणु पहले से ही मिट्टी में उपस्थित रहते हैं और अवसर पाकर किसी एक स्थान पर एकत्रित एवं प्रस्फुटित हो जाते हैं। मिट्टी को निस्सार या व्यर्थ वस्तु इसलिए न समझ लेना चाहिए कि वह चारों ओर प्रचुर परिमाण में फैली पड़ी है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ आपको यह बता सकती हैं कि असंख्य प्रकार के एक से एक उपयोगी तत्त्वों से भरा हुआ होने के कारण एक-एक मिट्टी का ढेला अमूल्य रासायनिक पदार्थ है। यदि मिट्टी की इतनी बहुतायत न होती तो उसके गुणों की परीक्षा करने वाले लोग उसे बढ़िया रंग-बिरंगे लेबिल के डिब्बों में रखते और सैकड़ों रुपया तोले से कम न बेचते। परंतु इसे या तो पृथ्वी का दुर्भाग्य कहना चाहिए कि वह इतनी अधिक मात्रा में है या मनुष्य का दुर्भाग्य कहना चाहिए कि ऐसी अमूल्य औषधि को सस्ती चीज होने के कारण उपेक्षा की दृष्टि से देखता है।

मिट्टी के उपयोग द्वारा स्वास्थ्य सुधार में हमें बहुत सहायता मिल सकती है। उस लाभ से वंचित न रहना चाहिए। निर्दोष पवित्र भूमि पर नंगे पाँवों टहलना चाहिए। जहाँ हरियाली छोटी-छोटी घास उग रही, वहाँ टहलना और भी अच्छा है। सोने के लिए यदि मुलायम जमीन पर बिस्तर लगाया जाए तो बड़ा अच्छा है। ऐसा न हो सके तो चारपाई को जमीन से बहुत ऊँचा न रखकर समीप रखना चाहिए, जिससे भूमि से निकलने वाली

वाष्प अधिक मात्रा में प्राप्त होती रहे। पहलवान लोग चाहे वे अमीर ही क्यों न हो, रुई के गद्दों पर कसरत करने की बजाय मुलायम मिट्टी के अखाड़ों में ही व्यायाम करते हैं, ताकि मिट्टी के अमूल्य गुणों का लाभ उनके शरीर को प्राप्त होता रहे।

आजकल साबुन से स्नान करने का फैशन चल पड़ा है, परंतु मिट्टी का प्रयोग साबुन की अपेक्षा हजार दर्जे अच्छा है। साबुन में पड़ने वाला कार्स्टिक सोडा त्वचा में खुश्की पैदा करता है और रोम कूपों को रोकता है, किंतु मिट्टी में यह बात नहीं है, वह मैल को दूर करती हैं, तरावट लाती है, रोम कूपों को स्वच्छ करती है, विष को खींचती है और त्वचा को कोमल ताजा, चमकीली एवं प्रफुल्लित कर देती है। मिट्टी शरीर पर लगाकर स्नान करना एक अच्छा उबटन है, गर्मी के दिनों में उठने वाली घमौरियाँ और फुंसियाँ इससे दूर हो जाती हैं। सिर के बालों को मुल्लानी मिट्टी से धोने का रिवाज अभी तक मौजूद हैं। इससे मैल दूर होता है, बाल काले, मुलायम और चिकने रहते हैं तथा मस्तिष्क में बड़ी तरावट पहुँचती है। अशुद्धि के हाथ साफ करने के लिए मिट्टी ही प्रयोग में आनी चाहिए। बर्तन आदि साफ करने के लिए तो इससे अच्छी और कोई चीज है ही नहीं।

बीमारियों में मिट्टी का प्रयोग "गीली मिट्टी की पट्टी" के रूप में करना चाहिए। साफ स्थान की कूड़ा-कचरा, कंकड़ आदि से रहित चिकनी मिट्टी चिकित्सा कार्य के लिए अच्छी होती है। कौन-सी मिट्टी अच्छी है, कौन-सी खराब है, इसके लिए अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं है। अपने आसपास के किसी साफ स्थान से सूखी मिट्टी ले लेनी चाहिए। यह जितनी चिकनी होगी उतनी ही अच्छी है। बालू, रेत या बिखर जाने वाली भुसभुसी मिट्टी ठीक नहीं होती। चूल्हा पोतने के काम में जिस मिट्टी को स्त्रियाँ काम में लाती हैं, वह ठीक है। मुल्लानी मिट्टी जो सिर धोने के काम आती है और गेरू खड़िया आदि बेचने वाले पंसारियों

के यहाँ मिलती है, वह भी अच्छी है। मिट्टी को कूटकर महीन करके फिर उसे चलनी में छान लेना चाहिए, जिससे यदि उसमें कूड़ा, कचरा, कंकड़ आदि हों, तो वह निकल जावें।

इस छनी हुई मिट्टी में से अपनी आवश्यकता भर लेकर किसी चौड़े तसले, परात आदि बर्तन में रखना चाहिए और उसमें खौलता हुआ पानी इतनी मात्रा में मिलाना चाहिए कि मिट्टी उतनी ही गीली हो पावे जितनी कि कुम्हार की मिट्टी होती है या रोटी बनाने का आटा होता है। पानी डालकर उसे कुछ देर रखा रहने देना चाहिए, जिससे मिट्टी भली प्रकार गल जाए और पानी की गर्मी ठंडी हो जाए। खौलता हुआ पानी डालने का प्रयोजन यह है कि उस मिट्टी में यदि कोई रोग-कीटाणु किसी प्रकार पहुँच गये हैं तो वे गर्मी के द्वारा नष्ट हो जायें।

मिट्टी को भली प्रकार सान लेना चाहिए, फिर उसकी एक अंगुल मोटी रोटी सी बनाकर पीड़ित स्थान पर बाँध देनी चाहिए। पट्टी साफ और मोटे कपड़े की होनी चाहिए। इसे न तो इतना कड़ा बाँधना चाहिए कि तकलीफ मालूम पड़े तथा खून का दौरा रुके और न इतनी ढीली बाँधनी चाहिए कि वह अपने स्थान पर से खिसक आवे। यह पट्टी तभी तक बँधी रहनी चाहिए जब तक कि वह गीली रहे। जब वह सूखने लगे तो उसे खोल देना चाहिए और नई पट्टी चढ़ानी चाहिए। उतरी हुई मिट्टी को गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए, क्योंकि उसमें विषैला अंश बहुत होता है।

मिट्टी की पट्टी प्रायः हर बीमारी में फायदा पहुँचाती है। ऐसा भय न करना चाहिए कि इससे ठंड लग जाएगी, यह भ्रम अनेक परीक्षणों के बाद गलत साबित हुआ है। अंदरूनी ऐसे गहरे विकार जहाँ तक दवा का असर ठीक तरह न पहुँच सकता, मिट्टी के उपचार से अच्छे हो जाते हैं। गुर्दे की खराबी, मूत्राशय के रोग, पेट के भीतरी फोड़े, गर्भाशय के विकार, दिल की धड़कन, फेफड़ों का क्षय, जिगर की सूजन आदि शरीर के अधिक भीतरी भाग में होने वाले रोगों में उदर या छाती पर मिट्टी की पट्टी

बाँधने से भीतरी विष धीरे-धीरे खिंच आता है और वे प्राणघातक रोग अच्छे हो जाते हैं। पेट का दर्द, कब्ज, आँतों का दाह, संग्रहणी पेचिश, जलोदर, पांडु, वायुगोला आदि के लिए पेट पर मिट्टी बाँधना बहुत फायदेमंद साबित होता है। बहुमूत्र, बूँद-बूँद करके पेशाब टपकना, पेशाब पीला चिकना, सफेदी लसदार चीजों सहित आने पर तथा स्त्रियों का प्रदर मासिक धर्म एवं गर्भाशय संबंधी रोगों में पेडू पर मिट्टी बाँधनी चाहिए। बुखार, खून, फिसाद, प्लेग, हैजा, जैसे रोगों की जड़ पेट में होती है, इसलिये उनके मिट्टी पेट पर ही बाँधनी चाहिए।

फुंसी, फोड़ा, जख्म, गाँठ, गिल्टी, नासूर, सूजन, खुजली, दाद, दर्द आदि के लिये उस स्थान पर मिट्टी बाँधनी चाहिए, जहाँ तकलीफ हो। इन रोगों पर मृत्तिका का उपचार जादू का काम करता है। तकलीफ तुरंत ही बंद होती है और रोग से पीछा छुड़ाने में देर नहीं लगती। दुखती हुई आँखों पर छोटी-छोटी आँख के बराबर की टिकियाँ बनाकर पलकों पर बाँध देनी चाहिए। मसूड़ों के दर्द में गाल के आसपास मिट्टी बाँधनी चाहिए।

जहरीले जानवर के काटे हुए स्थान पर मिट्टी के टिकिया तुरंत फायदा पहुँचाती है। बर्र, बिच्छू, ततैया, मधुमक्खी, कन-खजूरा, चूहा, मेंढक, छिपकली, मकड़ी, कुत्ता, बंदर आदि के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी की टिकिया बाँध देनी चाहिए। दर्द शीघ्र ही बंद हो जायेगा और जहर न चढ़ेगा। सर्प के काटने पर उस स्थान से खून निकाल देने के बाद काटे हुये स्थान को मिट्टी के गड्ढे में या बड़ी ढेरी में गाड़ देना चाहिए। यदि सारे शरीर में जहर फैल जाने की आशंका हो, तो अच्छी मिट्टी की जगह में गड्ढा खोदकर गरदन तक उसे दबा देना चाहिए। गरदन से ऊपर सिर का भाग खुला रखना चाहिए। कुष्ठ, उपदंश, रक्त विकार, सरीखे ऐसे रोगों में जिनमें संपूर्ण शरीर के विषैले हो जाने की आशंका हो, तो यह छाती तक गड्ढे में गाड़ने वाला उपचार बड़ा लाभदायक होता है।

चूल्हे की जली हुई मिट्टी से दाँत माँजने से दाँत साफ रहते हैं और पायेरिया की शिकायत नहीं होती। मिट्टी के ढेले पर पानी डालकर उसमें से निकलने वाली गंध को सूँघने से नकसीर फूटना, जुकाम, पीनस आदि अच्छे होते हैं। लू लगने पर पैरों के ऊपर मिट्टी थोप देनी चाहिए, सिर के ऊपर मिट्टी के लेप करने से मस्तिष्क में शांति होती है। एक सेर पानी में एक छटांक मिट्टी घोलकर उसे छह घंटे रखा रहने देना चाहिए। जब मिट्टी नीचे बैठ जाय और पानी निथर आवे, तो उस पानी को पीने से ज्वर, तृषा, दाह, जलन, निद्रानाश, उन्माद आदि गर्मी से उत्पन्न होने वाले रोग शांत हो जाते हैं।

चोट लग जाने पर मिट्टी का लेप बहुत फायदेमंद है। इससे घाव भी बहुत जल्दी भर जाता है। साधु लोग भभूत रमाते हैं, इसी प्रकार मृत्तिका से या बालू से रगड़-रगड़कर सारा शरीर धोया जाए, तो दाद, खाज, खुजली व छाजन, फुंसी, बदबू आदि विकारों से छुट्टी मिलती है और त्वचा बहुत कोमल, निर्मल, स्वच्छ एवं चमकदार हो जाती है।

धातु के बर्तनों की अपेक्षा मिट्टी की हॉंडी में भोजन बनाना, मिट्टी के तवे पर रोटी बनाना, मिट्टी के कुल्हड़ में पानी या दूध पीना बहुत लाभदायक है। इससे भोजन का स्वाद कई गुना बढ़ जाता है। कढ़ाई के उबाले हुए दूध और मिट्टी की हॉंडी में औटाये हुए दूध के स्वाद में क्या अंतर है ? इसकी परीक्षा हर कोई आसानी से कर सकता है। सचमुच मिट्टी बड़ी लाभदायक वस्तु है, उससे लाभ उठाने का हमें सदा ही प्रयत्न करना चाहिए।

अग्नि द्वारा आरोग्य

अग्नितत्त्व जीवन का उत्पादक है। गर्मी के बिना कोई जीव या पौधा न तो उत्पन्न हो सकता है और न विकसित होता है। चैतन्यता जहाँ कहीं भी दिखाई पड़ती है, उसका मूल गर्मी है। गर्मी समाप्त होते ही क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है, शरीर

की गर्मी का अंत हो जाए, तो जीवन का भी अंत ही समझिए। अग्नितत्त्व को सर्वोपरि समझते हुए आदि वेद ऋग्वेद में सर्वप्रथम मंत्र का सर्व प्रथम अक्षर "अग्नि" ही आया है। 'अग्ने मीळे पुरोहित' मंत्र में वेद भगवान् ने ईश्वर को अग्नि नाम से पुकारा है।

सूर्य अग्नितत्त्व का मूर्तिमान् प्रतीक है। इसीलिए सूर्य को जगत् की आत्मा माना गया है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जिन पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं को धूप पर्याप्त मात्रा में मिलती है, वे स्वस्थ और निरोग रहते हैं और उसके विपरीत जहाँ सूर्य की जितनी कमी होती है, वहाँ उतनी ही अस्वस्थता रहती है। अंग्रेजी की एक कहावत है कि "जहाँ धूप नहीं जाती, वहाँ डॉक्टर जाते हैं।" अर्थात् प्रकाशरहित स्थानों में बीमारियाँ रहती हैं।

भारतीय तत्त्ववेत्ता अति प्राचीनकाल से सूर्य के गुणों से परिचित हैं, इसलिए उन्होंने सूर्य उपासना की नाना विधि-व्यवस्थाएँ प्रचलित कर रखी हैं। अब पाश्चात्य भौतिक विज्ञान द्वारा भी सूर्य के अद्भुत गुणों से परिचित होते जा रहे हैं। सूर्य की सप्त किरणों में अल्ट्रा वायलेट और अल्फा वायलेट किरणें स्वास्थ्य के लिए बड़ी ही उपयोगी साबित हुई हैं। मशीनों द्वारा कृत्रिम रूप से भी यह किरणें पैदा की जाने लगी हैं, पर जितना लाभ सीधे सूर्य से आने वाली किरणों से होता है। उतना मशीन द्वारा निर्मित किरणों से नहीं होता।

योरोप अमेरिका में अब रोगियों को धूप के उपचार द्वारा अच्छा करने का विधान बड़े जोरों से चलने लगा है। वहाँ बड़े अस्पताल केवल सूर्यशक्ति से बिना किसी औषधि के रोगियों को अच्छा करते हैं। क्रोमोपैथी नामक एक स्वतंत्र चिकित्सा पद्धति का आविष्कार हुआ है, जिसमें रंगीन काँच की सहायता से सूर्य की अमुक किरणों को आवश्यकतानुसार रोगी तक पहुँचाया जाता है। रोग-कीटाणुओं का नाश करने की जितनी धूप में है उतनी और किसी वस्तु में नहीं होती। क्षय के कीड़े जो बड़ी मुश्किल से मरते

हैं, सूर्य के सम्मुख रखने से कुछ मिनटों में ही नष्ट हो जाता है। बेटिव, लुक्स, जॉनसन, रोलियर, लुइस, रडोक, टाइरल प्रभृति उच्चकोटि के सुप्रसिद्ध डॉक्टरों ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में सूर्य-किरणों की सुविस्तृत महिमा गाई है और बताया है कि सूर्य से बढ़कर किसी औषधि में रोग-निवारक शक्ति नहीं है।

सूर्य किरणों से निरोग और रोगी सभी को समान रूप से फायदा होता है, इसलिए यदि नित्य नियमित रूप से निम्न विधि से सूर्य स्नान किया जा सके तो स्वास्थ्य सुधार में आश्चर्यजनक सहायता मिल सकती है।

सूर्य स्नान की विधि

(१) सूर्य स्नान के लिए प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है। उससे घटिया दर्जे का समय संध्याकाल है, इसके लिए हलकी किरणें ही उत्तम हैं, तेज धूप में न बैठना चाहिए।

(२) सूर्य स्नान आरंभ में आध घंटे करना चाहिए, फिर धीरे-धीरे इसे बढ़ाकर एक-डेढ़ घंटे तक ले जाना चाहिए।

(३) लज्जा-निवारण का एक बहुत छोटा, हल्का और ढीला वस्त्र कटि प्रदेश में रखकर अन्य समस्त शरीर को नंगा रखना चाहिए। यदि एकांत स्थान हो, तो कटि वस्त्र को भी हटाया जा सकता है।

(४) सूर्य स्नान करते समय सिर को रुमाल या हरे पत्तों से ढक लेना चाहिए। केला या कमल जैसा बड़ा और शीतल प्रकृति का पत्ता मिल जाय तो और भी अच्छा, अन्यथा नीम की पत्तियों का एक बड़ा-सा गुच्छा लिया जा सकता है, जिससे सिर ढक जाए।

(५) जितनी देर सूर्य स्नान हो उतने समय के चार भाग करके (१) पेट (२) पीठ (३) दायाँ करवट (४) बायाँ करवट। इन चारों भागों को सूर्य के सामने रखना चाहिए, जिससे हर एक अंग को धूप लग जाए।

(६) धूप सेवन करने के बाद ताजे पानी में भिगोकर निचोड़े हुए मोटे तौलिये से शरीर के हर अंग को रगड़ना चाहिए, जिससे गर्मी के कारण रोम कूपों द्वारा भीतर से निकली हुई खराबी शरीर से ही चिपकी न रह जाए।

(७) धूप सेवन खाली पेट करना चाहिए। कम से कम दो घंटे पहले और आध घंटे बाद तक कुछ खाना चाहिए।

(८) सूर्य स्नान का स्थान ऐसा होना चाहिए, जहाँ जोर के हवा के झोंके न आते हों।

(९) धूप सेवन के बाद स्वभावतः शरीर हल्का और फुर्तीला हो जाता है, परंतु यदि ऐसा न हो और देह भारी मालूम पड़े तो सूर्य स्नान का समय कुछ कम कर देना चाहिए।

(१०) यदि स्थिति और ऋतु अनुकूल हो, तो सूर्य स्नान के बाद ताजे पानी से स्नान कर डालना चाहिए। जिस दिन बादल हो रहे हों या तेज हवा चल रही हो उस दिन सूर्य सेवन न करना चाहिए।

नियमित रूप से सूर्य स्नान करने से हर अवस्था के तथा हर रोग के स्त्री-पुरुष तथा बालक-बालिका को लाभ पहुँचता है। सूर्य की किरणें शरीर में भीतर तक प्रवेश कर जाती हैं और रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करती हैं, पसीने द्वारा उन खराबियों को बाहर निकालती हैं और अपनी पोषकशक्ति से क्षत-विक्षत एवं निष्क्रिय रुग्ण अंगों को बल प्रदान करती हैं। टूटी हुई हड्डी जुड़ने तथा घावों को भरने तक को धूप सेवन से बहुत लाभ होता देखा गया है।

वाष्प चिकित्सा

अग्नितत्त्व का पानी के साथ सम्मिश्रण हो जाने से उसके लाभ बड़े अनोखे हो जाते हैं। भाप द्वारा गर्मी पहुँचाने से पीड़ित अंगों को बड़ी मदद मिलती है। छोटे बच्चे की उँगली में चोट लग

जाय तो वह उसे मुँह से फूँकता है। मुँह में पानी और गर्मी रहने के कारण फूँकने पर भाप निकलती है।

छोटे बच्चे को कुदरत अपने आप सिखाती है कि भाप से सेंक करो तो चोट अच्छी हो जायेगी। इसी प्रकार आँख में कोई चोट लग जाने पर कपड़े को मुँह की भाप से गरम करके उसे सेकते हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथों में अनेक प्रकार के "बफारे" देने का उल्लेख है।

गर्मी पहुँचाने से रोम कूप खुलते हैं और पसीने के द्वारा भीतर उत्पन्न हुआ विकार बाहर निकलता है, किंतु सूखी गर्मी में एक दोष है कि उससे खुश्की आती है, जीवन रस सूखते हैं और बहुत से रोग-कीटाणु जल-भुनकर भीतर ही चिपक जाते हैं, जो कि मौका पाकर फिर सजीव हो जाते हैं। यह दोष "गीली गर्मी" पहुँचाने में अथवा भाप द्वारा सेंक करने में नहीं होता। पानी की सरसता और अग्नि की उष्णता दोनों मिल जाने के कारण हानिरहित लाभ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वाष्प चिकित्सा के कई तरीके हैं।

(१) समस्त शरीर में विकार हो तो समस्त शरीर को भाप देनी चाहिए। इसका तरीका यह है कि टीन का एक इतना लंबा टब बनवाना चाहिए, जिसमें आदमी अच्छी तरह लेट सके। साधारणतः यह छह फुट लंबा, दो फुट चौड़ा, दो फुट ऊँचा होना चाहिए। सिर की तरफ का हिस्सा चौड़ाई में कुछ अधिक ऊँचा उठा रहना चाहिए। इस टब में सत्त्व गरम पानी भरकर उसमें रोगी को उलटा देना चाहिए। गरदन से ऊपर सिर का भाग पानी से बाहर निकला रहे, इसके लिए एक लकड़ी का तकिया सिर के नीचे लगाना चाहिए। इस टब में चार पाये लगे रहने चाहिए, ताकि जमीन से कुछ ऊँचा रहे। टब के नीचे पैरों की तरफ एक अँगीठी जलाकर रख देनी चाहिए, ताकि पानी ठंडा न होने पावे। आध घंटे से शुरू करके धीरे-धीरे समय बढ़ाते हुए एक घंटे तक यह वाष्प स्नान करना चाहिए। इससे भीतर के अनेक विकार निकल जाते हैं

और शरीर बहुत ही हल्का, फुर्तीला तथा चैतन्य हो जाता है। नित्य इस प्रयोग को करने से शरीरव्यापी समस्त दोषों की शुद्धि हो जाती है।

(२) एक अँगीठी पर पानी भरकर भगौना रख लेना चाहिए। उसमें ऊनी कपड़े के दो टुकड़े डाल लेने चाहिए। एक सूती कपड़ा उस स्थान पर डाल देना चाहिए, जहाँ सेंक करना हो। अब गरम पानी में से एक ऊनी कपड़े का टुकड़ा निकालें और उसे निचोड़कर पीड़ित स्थान पर सूती कपड़े के ऊपर फैला दें और सेंक पहुँचने दें। जब ठंडा होने लगे तो उसे हटा दें और दूसरा ऊनी कपड़ा निचोड़कर उस स्थान पर डाल दें। इस प्रकार ठंडे कपड़े को हटाकर गरम कपड़े को डालने का क्रम जारी रखने से सेंक बराबर होता रहता है। सूती कपड़ा पड़ा रखना इसलिये आवश्यक है कि गरम अंग पर से कपड़ा हटाते समय ठंडी हवा का झोंका न लगे और पानी में से यदि कभी ऊनी कपड़ा कुछ अधिक गर्म आ जाए तो उसका असर एकदम त्वचा पर न पड़े। दो ऊनी कपड़े इसलिए जरूरी हैं कि एक को हटाने पर दूसरा तुरंत ही उसके स्थान पर डाला जा सके। गरम टुकड़े को निचोड़कर तैयार कर लेना चाहिए। तब ठंडे को हटाना चाहिए, जिससे कि सेंक में बीच में विक्षेप न पड़े, सिलसिला टूटने न पाए।

(३) बेंत से छिरछिरी बुनी हुई कुर्सी पर पैर ऊपर रखकर बैठना चाहिए; ऊपर से कंबल ओढ़कर भीतर से सब कपड़े उतार देने चाहिए। कंबल देह से चिपटा हुआ न हो, वरन् कुर्सी के चारों ओर लिपटा हो। कुर्सी के नीचे अँगीठी पर पतीली या भगौना रखना चाहिए। भगौने में से जो भाप निकलेगी, वह कुर्सी के छेदों में होकर शरीर में लगेगी। कंबल लिपटा होने के कारण वह भाप भीतर ही रहेगी और सेंक होता रहेगा।

(४) छिरछिरी रस्सी से बुनी हुई चारपाई पर रोगी को लिटावें। चारपाई के नीचे तीन अँगीठियों पर पानी के भगौने

रखकर इस प्रकार रखें कि एक पीठ के नीचे, दूसरा पेट के नीचे, तीसरा जंघाओं के नीचे रहे। चारपाई पर बिछौना कुछ न चाहिए, हाँ ऊपर से कंबल उड़ा देना चाहिए। जिससे भाप रुकी रहे और शरीर का सेंक ठीक प्रकार हो सके। रोगी चारों ओर शरीर को पलटता रहे, करवट बदलता रहे, जिससे शरीर को सब ओर से भाप ठीक प्रकार लग जावे।

समस्त शरीर के रोगों में लंबे टब में लिटाना अच्छा है। जननेंद्रिय, पेड़ू, गुदा, मूत्राशय, जंघा आदि के लिए कुर्सी पर बैठाने का ढंग ठीक है। छाती, पेट, पीठ, सिर आदि के सेंकने के लिए ऊनी कपड़ों के टुकड़े का सेक अच्छा है। कान, नाक, डाढ़, मुँह आदि के छिद्रों में भीतर भाप पहुँचाने का तरीका यह है कि अँगीठी पर पानी भरकर एक लोटा रखें उसके ऊपर चौड़े मुँह की हुक्के की चिलम उल्टी करके इस प्रकार रखें कि लोटे का मुँह उससे ठीक तरह ढक जाए और धुआँ खींचने वाला नीचे का छोटा छेद ऊपर को रहे। लोटे की भाप इस छोटे छेद में होकर ऊपर निकलेगी, इस भाप को कान आदि के छिद्रों पर लगाकर भीतर सेंक पहुँचाना चाहिए।

(५) पैर या हाथ वगैरह में सेंक पहुँचाना हो तो अँगीठी के ऊपर चौड़े मुँह का भगोना रखकर उसमें हाथ या पाँव को डाल देना चाहिए और गरम पानी में पड़े सेंक होते रहने देना चाहिए।

इन तरीकों से या कोई तरीका समझ में आ जाय, उससे सुविधानुसार व्यवस्था करके भाप द्वारा पीड़ित अंगों को सेंक पहुँचाना चाहिए। पानी सल्ल्य रहे। इतना गरम न हो, जिससे कष्ट मालूम पड़े। सेंक के बाद मोटे तौलिये से शरीर को खूब रगड़कर पोंछ डालना चाहिए। तेज या ठंडी हवा चल रही हो, तो ऊपर से कपड़ा ओढ़ लेना चाहिए। सेंक के तुरंत बाद ठंडी या तेज हवा का खराब असर न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए।

वाष्प चिकित्सा बहुत ही लाभदायक है। दर्दों को इससे तुरंत ही लाभ पहुँचता है और अंग की पीड़ा दूर होकर एक नवीन चैतन्यता एवं स्फूर्ति मालूम देती है। आवश्यकतानुसार एक दिन में कई बार भी सेंक किया जा सकता है।

शारीरिक ताप द्वारा सेंक

मनुष्य शरीर में काफी अग्नितत्त्व है, उसकी गर्मी से देह की मशीन चलती है और सब कल-पुर्जे नियमानुसार काम करते हैं। यह गर्मी थर्मामीटर द्वारा नापी जा सकती है। करीब ६६ डिग्री तापमान साधारण अवस्था में बना रहता है। रुग्ण अंग में तो यह और भी अधिक बढ़ जाता है। इस ताप को यदि रोक रखा जाए तो उससे भी सेंक होता है और सेंक से होने वाले लाभ प्राप्त होते हैं।

चिकनाई में यह गुण है कि वह ताप को रोकती है। जिसके शरीर में चर्बी पर्याप्त मात्रा में होगी, उसे सर्दी या गर्मी कम सतावेगी। तेल, घी, वैसलीन आदि चिकने पदार्थों के लगाने से त्वचा पर एक प्रकार का अस्तर-सा चढ़ जाता है, जो बाहर की सर्दी या गर्मी को भीतर नहीं जाने देता और न भीतर के ताप को बाहर जाने देता है। पीड़ित स्थान पर चिकनाई लगा देने से भीतर की गर्मी रुकी रहती है और उससे सेंक होता रहता है। घी या तेल का रुई में भिगोया हुआ फोआ बाँधा जाता है। आटे में चिकनाई मिलाकर पुल्टिस बनाई और बाँधी जाती है, वैसलीन या ग्रीस आदि चुपड़ी जाती है। बिनौला, अंडी, अलसी, सरसों, तिल आदि तैल प्रधान बीजों का लेप किया जाता है। यह सब शारीरिक गर्मी को रोककर उस स्थान का सेंक करने के तरीके हैं। इससे पीड़ित स्थान को बड़ा आराम मिलता है। गर्मी की जहाँ अधिकता होती है, वहाँ पीड़ा मालूम नहीं पड़ती, खाँसी वालों के फेफड़ों में जख्म होते हैं, जुकाम वालों के सिर में जख्म होते हैं, पेचिश वालों के आँतों में जख्म होते हैं, मूत्राघात

वालों के गुर्दे में जख्म होते हैं। कफ, आँख, नाक को पोंट, मूत्र की लसदार सफेदी—यह सब एक प्रकार के पीब हैं, जो भीतर के जख्मों से निकलते हैं। इन भीतर के जख्म से किसी को उतना दर्द नहीं होता, जितना कि बाहर त्वचा पर होने वाली छोटी फुंसी से होता है। कारण यह है कि बाहर त्वचा का तापमान कम रहता है। शरीर में भीतर अधिक गर्मी रहने से दर्द नहीं मालूम पड़ता। इसी प्रकार यदि बाहर के किसी पीडित अंग को गर्मी पहुँचाई जाती है तो उसकी पीड़ा तुरंत घट जाती है।

इस तरह की चिकनी चीजें, रुई या उनी कपड़ा बाँधने से शरीर का ताप रुककर वहाँ सँक होता है। इस ताप को सुरक्षित रखने की विधि का प्रयोग करना भी ठीक है, पर एक बात ध्यान रखना चाहिए कि लगातार ताप को अधिक समय रोककर न रखा जाए। बीच-बीच में पट्टी, पुल्टिस या लेप हटाकर ताजी हवा का प्रवेश भी करते रहना आवश्यक है।

अग्नि उपासना

अग्नि के प्रतिनिधि सूर्य की उपासना को हमारे यहाँ जो धार्मिक महत्त्व मिला हुआ है, उसमें बड़ा वैज्ञानिक महत्त्व छिपा हुआ है। सूर्य का अर्घ चढ़ाना, नदी, तालाब या किसी जलाशय में खड़े होकर सूर्य का जप करना—ये क्रियाएँ धार्मिक होते हुए भी स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी हैं। सूर्य नमस्कार विधि से व्यायाम करने की विधि अन्य व्यायामों की अपेक्षा कई दृष्टियों से अच्छी है।

सुगंधित उपयोगी औषधियों को हवन-सामग्री बनाकर अग्नि में हवन करना एक वैज्ञानिक कार्य है। इस पद्धति से उपयोगी तत्त्व सूक्ष्म रूप धारण करके वायु द्वारा हमें प्राप्त होते हैं और बड़ा लाभ पहुँचाते हैं, उसका सविस्तार वर्णन वायु प्रकरण में करेंगे।

सूर्य का व्रत भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। दिनों के नाम, गहों के नाम के अनुसार रखे गये हैं। इसका कारण यह है

कि उस दिन उस ग्रह का सूक्ष्म प्रभाव इस मर्त्यलोक में विशेष रूप से आता है। सूर्य की धूप तो रोज निकलती है, परंतु जीवों की मानसिक एवं शरीरिक स्थिति पर पड़ने वाला सूक्ष्म प्रभाव रविवार के दिन ही आता है। उस प्रभाव को अपने ऊपर उत्तम रीति से ग्रहण करने के लिए अपनी शारीरिक और मानसिक स्थिति को तदनुकूल बनाना पड़ता है। व्रत रखने से शरीर की स्थिति ऐसी हो जाती है कि उस प्रभाव के उत्तम तत्त्वों को अपनी ओर खींच सके। इसलिए रविवार के दिन व्रत रखना चाहिए।

सबसे अच्छा निराहार व्रत है। केवल जल या नीबू मिला जल पीकर, खूब पीते रहकर दिन-रात निकाल देना सर्वोत्तम व्रत है। उसके बाद, फलों के रस पर रहना है, यदि यह भी न हो सके तो गूदेदार फलों पर रहना चाहिए। जिनसे यह भी न निभ सके। वे एक वक्त, बिना नमक, मिठाई का भोजन करके रहें। रोटी, दलिया, चावल, दूध, दही, छाछ, साग, फल आदि सात्विक आहार भूख से कम मात्रा में एक वक्त ग्रहण करें, उसमें नमक, मिर्च, मसाले, शक्कर जैसी चटोरापन बढ़ाने वाली चीजें न मिलानी चाहिए। जो भूख के बहुत कच्चे हैं, या कमजोर हैं, उनके लिए नमक-मिठाई छोड़ देना भी काफी है। गर्भवती स्त्रियाँ नमक मिठाई छोड़कर साधारण आहार यथाक्रम जारी रख सकती हैं। पूरा न सही अधूरा सही, किसी न किसी रूप में व्रत करना चाहिए, थोड़ा-सा व्रत साधन करने पर भी लाभ होता है।

व्रत के दिन स्नान करके एक छोटा गीला वस्त्र, अँगोछा, रुमाल आदि शरीर पर रखकर, प्रातःकाल सूर्य की ओर मुख करके बैठना चाहिए। एक बार खुले नेत्रों से सूर्य का दर्शन करके फिर बंद नेत्रों से उसका ध्यान करना चाहिए। ध्यान के साथ "ॐ सूर्याय नमः" इस मंत्र को जपते जाना चाहिए। इसके लिए अच्छा समय तो सबेरे का ही है, पर सुविधा न हो तो अन्य कोई समय नियत किया जा सकता है। ध्यान और जप कम से कम १५ मिनट अवश्य करना चाहिए। अधिक देर संभव हो तो और भी

अच्छ है। ध्यान जप के समय ऐसी भावना करते जाना चाहिए कि, "सूर्य का सूक्ष्म तेजस्वी प्रभाव मेरे अंग-प्रत्यंगों में प्रवेश करता हुआ मुझे आरोग्यता प्रदान कर रहा है।"

इस प्रकार व्रत और उपासना करने से अनेक प्रकार के रोगों से छुटकारा मिलता है। तेज, बल, वीर्य और आरोग्य की वृद्धि होती है। सूर्य की उपासना करने वाले माता-पिताओं की संतान सुंदर होती है और निरोग रहती है।

जल चिकित्सा

मनुष्य शरीर में जल का अंश ६० प्रतिशत और अन्य तत्त्व १० प्रतिशत हैं। इससे प्रतीत होता है कि अन्य तत्त्व की अपेक्षा जल तत्त्व की सर्वोपरि आवश्यकता है। इसके कम हो जाने से देह सूखने लगती है, नाड़ियाँ जकड़ने लगती हैं, हड्डियाँ निकल आती हैं, खून गाढ़ा हो जाता है और दाह, प्यास, खुश्की आदि के अनेक उपद्रव होने लगते हैं।

जल शरीर को सींचता है। प्रतिदिन कई सेर पानी लोग पीते हैं, ताकि शरीर में जलतत्त्व की स्थिरता रहे। ताजे जल में रहने वाला उपयोगी रासायनिक पदार्थों से शरीर का पोषण होता है। भीतरी अंग में जो विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, वे पसीना-मूत्र तथा अन्य मलों के साथ द्रवरूप में बाहर निकलती रहती हैं। जैसे—वर्षा से पौधे प्रफुल्ल एवं चैतन्य होते हैं और पानी के अभाव में ये कुम्हलाते एवं सूखते हैं, यही हाल शरीर का है। पर्याप्त मात्रा में उचित विधि से यदि अंग-प्रत्यंगों को जल प्राप्त होता रहे तो शरीर की दृढ़ता एवं स्वस्थता ठीक प्रकार बनी रहती है।

जल द्वारा लोगों के निवारण में महत्त्वपूर्ण कार्य होता रहता है। स्नान को ही लीजिए, वह स्वास्थ्य को ठीक रखने में अनुपम सहायता देता है। हिंदू धर्म में हर उत्तम कार्य से पहले स्नान करने का विधान है। तीर्थ स्नान, माघ स्नान, वैसाख स्नान, कार्तिक स्नान, पर्व स्नान आदि नाना विधि-विधानों में स्नान की महत्ता से

लोगों को लाभ उठाने के अवसर धर्म के नाम पर दिये गये हैं। स्नान करना दैनिक धार्मिक कृत्य समझा जाता है। अनेक हिंदू बिना स्नान किये भोजन नहीं करते। अनेकों के कार्यक्रम में प्रातःकाल के प्रारंभिक कार्यों में शौच के बाद स्नान का ही नंबर है। वे बिना भोजन किये रह सकते हैं, पर बिना स्नान किये नहीं रहते। हिंदू धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है, उसमें उन्हीं आचार-विचारों को स्थान दिया गया है, जो शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी एवं आवश्यक हैं।

हिंदू धर्मशास्त्र अत्यंत प्राचीन काल से कहता आ रहा है कि **“अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति”** अर्थात् शरीर की शुद्धि जल से होती है। देह में जो विकार, दोष, विष भरे हुए हैं, उन अशुद्धियों को निकालकर शुद्धता प्राप्त करनी है, तो जल का उपयोग करो। इन शास्त्र वचनों पर लोग उतना ध्यान नहीं देते थे, पर अब साइंस भी इस उपदेश का अनुकरण करने को बाध्य हुई है, तो लोगों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है। योरोपीय ठंडे देशों में स्नान का उतना प्रचलन नहीं है। ठंड के कारण वहाँ सब कोई रोज नहीं नहाते। उन्हें स्नान का महत्त्व भी मालूम न था, पर अब जबकि वहाँ हर बात की नये सिरे से वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परीक्षा हो रही है, तब स्नान का महत्त्व भी उनके सामने आया है। इसके लाभों को देखकर वे लोग दंग रह गये हैं। डॉक्टर लुई कूने, नीप, बरनर मेक फेडन, जुस्ट प्रभृति अनेक विद्वानों ने स्नान को जीवन मूरि बताया है और उसी के आधार पर जल चिकित्सा का आविष्कार करके स्नान द्वारा संपूर्ण रोग को निवारण करने के विज्ञान पर बड़े-बड़े मोटे ग्रंथ लिखे हैं।

इस छोटी पुस्तक में उन सब बातों की चर्चा नहीं हो सकती, जो उपरोक्त विद्वानों ने अपने ग्रंथों में स्नान की उपयोगिता के संबंध में लिखी हैं। भारतवासी इस बात को निर्विवाद रूप से यह मानते आ रहे हैं कि स्नान स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी है। भारतवर्ष गर्म देश होने के कारण यहाँ उसके लाभ और भी

अधिक हैं। स्नान के महत्त्व को व्यवहारिक रूप से स्वीकार किये बिना इस देश में कोई मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता।

दैनिक स्नान 'हर-हर गंगा' करके दो लोटे सिर और पीठ पर लुढ़का देने के साथ समाप्त न कर देना चाहिए। यह तो स्नान का एक उपहास होगा। बेगार टालने के लिए नहीं, वरन् शरीर की अशुद्धताओं के निवारण और देह के सिंचन-पोषण के लिए स्नान होना चाहिए। कुँआ, नदी, नहर, झरना, सोता या नल का ताजा पानी उत्तम है। उन बड़े तालाबों का पानी भी ठीक है, जिसे मनुष्य या पशुओं द्वारा गंदा नहीं किया जाता है या जिनमें कोई हानिकारक पदार्थ न पड़ते हों। बहने वाले ताजे पानी में जो तत्त्व होते हैं, वह रुके हुए, बर्तनों में भरकर रखे हुए पानी में नहीं रहते। बीमारों की विशेष आवश्यकता को छोड़कर साधारणतः सबको सत्त्व ताप के ठंडे ताजे जल से स्नान करना चाहिए। हर ऋतु के लिए ऐसा पानी ठीक है। कई व्यक्ति जाड़े के दिनों में गरम पानी से स्नान करते हैं, यह ठीक नहीं। जरूरत हो तो धूप में रखकर उसमें थोड़ी गर्मी लाई जा सकती है। सिर पर गरम पानी डालना तो आँखों को बहुत नुकसान पहुँचाता है। बहुत तेज हवा में नहाना अच्छा नहीं, इसके लिए ऐसा स्थान रखना चाहिए, जहाँ तेज हवा के झोंके न लगते हों, क्योंकि ठंडे शरीर पर हवा की तेजी हर ऋतु में खराब असर डालती है।

स्नान करते समय मोटे, खुरदरे तौलिये से त्वचा को धीरे-धीरे खूब रगड़ना चाहिए, जिससे चमड़ी लाल हो जाए। इस प्रकार घर्षण करने से देह के भीतर की गर्मी को उत्तेजना मिलती है। जैसे लोहे को गरम करके पानी में डालकर लुहार लोग उसे मजबूत बना लेते हैं, उसी प्रकार घर्षण द्वारा गर्मी बढ़ाकर ठंडे जल में स्नान करने पर शरीर मजबूत होता है। दूसरे त्वचा में जो बारीक-बारीक छिद्र हैं, वे साफ हो जाते हैं और पसीना ठीक प्रकार निकलता है। त्वचा पर जमा हुआ मैल छूट जाने से, बदबू, चिपचिपाहट, आलस्य और उदासी दूर हो जाती है। पीठ, रीढ़ की

हड्डी, बगलें, गरदन, कंधे, जंघाएँ, चूतड़, गुप्त इंद्रिय आदि कुछ स्थान ऐसे हैं, जिनका स्वच्छता पर स्नान के समय उचित ध्यान नहीं दिया जाता, यह ठीक नहीं। हर एक अंग की सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। स्नान में जल्दबाजी से काम न लेना चाहिए। धीरे-धीरे प्रसन्नतापूर्वक हर अंग की उचित सफाई करते हुए नहाना चाहिए और इस कार्य में कम से कम २०-२५ मिनट लगाने चाहिए। स्नान के बाद शरीर को कपड़े से सुखा डालना चाहिए। जाड़े के दिनों में एक बार और अन्य ऋतुओं में सुबह-शाम, दो बार नहाना चाहिए।

स्नान की नियमित और उचित रीति से व्यवस्था रखने पर रोगों के आक्रमण से बहुत बड़ी रक्षा होती रहती है, छोटे-मोटे रोग तो बिना जाने ही इस उपचार से अपने आप अच्छे होते रहते हैं। फुहारे के नीचे बैठकर स्नान करने से क्रीड़ा, मनोरंजन और शीतलता अधिक प्राप्त होती है। नदी, तालाब में तैरकर नहाना कई दृष्टियों से बहुत अच्छा है। दो-चार मेह पड़ जाने के बाद वर्षा में स्नान करना भी बड़ा आनंददायक होता है। मेह में ऐसी जगह नहाना चाहिए कि मकान, छप्पर आदि की गंदी छीटें न आती हों। इसके लिए मैदान या घर की सबसे ऊपर वाली छत ठीक रहती है।

बीमारों के लिए भी स्नान आवश्यक है। चेचक आदि जख्म वाली बीमारियों के रोगी को छोड़कर अन्य सभी बीमारों की देह भीगे तौलिये से रगड़ देनी चाहिए, जिससे उस स्थिति में भी स्नान का लाभ प्राप्त होता रहे और देह पर गंदगी न जमने पावे।

बीमारों के रोग को निकालने और ताजगी तथा बल देने के लिए कटि स्नान, मेहन स्नान, मेरुदंड स्नान के तरीके बहुत अच्छे हैं।

कटि-स्नान—इस स्नान के लिए टीन, पीतल, लकड़ी या पत्थर की नांद (Tub) बनवानी चाहिए, जो गोल हो, परंतु पैदा

चौड़ा, समतल हो। पीठ की तरफ का भाग कुर्सी की तरह कुछ ऊँचा उठा हुआ हो। इस टब में रोगी को बिल्कुल नंगा करके बिठाना चाहिए। दोनों पैर टब से बाहर निकले रहें। इसमें पानी इतना भरना चाहिए कि ऊपर तक आ जावे। इस प्रकार बैठकर रोगी अपने पेड़ू, जंघा और गुप्त स्थान धीरे-धीरे मसलता रहे। रोगी कमजोर हो तो आवश्यकतानुसार चादरा या कंबल उढ़ाया जा सकता है।

मेहन-स्नान—इस स्नान में केवल गुप्तेन्द्रिय को ही पानी में भिगोया जाता है। तरीका यह है कि एक लकड़ी की छोटी चौकी पर बैठकर पाँव दूर फैला देने चाहिए और थोड़ा-थोड़ा पानी लेकर गुप्तेन्द्रियों को धीरे-धीरे मसलना चाहिए। तौलिया पानी में भिगोकर उससे रगड़ना भी ठीक है।

मेरुदंड-स्नान—स्वस्थ आदमी को नल के नीचे बैठकर रीढ़ की हड्डी के ऊपर पानी की धार लेनी चाहिए। कमजोर आदमी तौलिये को पानी में भिगोकर उसे रस्सी जैसा बना लें और उसके दोनों सिरे पकड़कर रीढ़ की हड्डी पर नीचे-ऊपर घिसें।

यह तीनों स्नान रोगी की अवस्था के अनुसार दस मिनट से लेकर आध घंटे तक कराये जाते हैं। स्नान करते समय कोई वस्त्र पहना हुआ तो न हो, पर आवश्यकतानुसार चादरा या कंबल उढ़ाया जा सकता है। स्नान के बाद भीगे हुए शरीर को भली प्रकार पोंछ डालना चाहिए और देह में गर्मी लाने के लिये धीरे-धीरे टहलना चाहिए या ऋतु एवं समय अनुकूल हो तो थोड़ी धूप ले लेनी चाहिए। स्नान से दो घंटे पहले से और एक घंटे बाद तक कुछ न खाना चाहिए। हाँ, यदि ठंड अधिक लगती हो तो उपरोक्त स्नानों के बाद थोड़ा गरम दूध लिया जा सकता है।

गीला चादरा लपेटना—गीले कपड़े की पट्टी भी बहुत फायदा करती है। एक साफ चादरा पानी में भिगोकर चारपाई पर बिछावें, उस पर रोगी को लिटाकर चादरे को चारों ओर से बीमार

के बदन पर लपेट दें। सिर खुला रहे। चादरे के उपर कंबल ओढ़ा देना चाहिए। इससे अनावश्यक गर्मी खिंच जाती है। पसीना आकर देह में हल्कापन आता है।

कपड़े की पट्टी—पीड़ित स्थान पर कपड़े का टुकड़ा या रुई का फोहा भिगोकर रखें और ऊपर से पट्टी बाँध दें।

उपरोक्त तरीकों से शीतल जल की प्रतिक्रिया होती है और खून का दौरा बढ़ जाता है। जैसे नंगे बदन पर ठंडे पानी के छींटे मारने से फुरफुरी-सी आती है और रोये खड़े हो जाते हैं। इस उत्तेजना के साथ-साथ ही रक्त का दौरा हो जाता है। इसी प्रकार जिस स्थान पर शीतल पानी डाला जाता है, वहाँ रक्त की उत्तेजना अधिक हो जाती है। ठंड लगने से किसी स्थान की गर्मी कम होती है, उस कमी को पूरा करने के लिये गरम खून वहाँ दौड़ता है। जहाँ रक्त की गति अधिक होगी, वहीं रोगों के बीजाणु अधिक देर न ठहर सकेंगे। नये रक्त को अधिक मात्रा में आने से उस स्थान की क्षतिपूर्ति भी बहुत जल्दी हो जाती है। इस प्रकार जल चिकित्सा द्वारा रोगों का निवारण हो जाता है। सुस्त और असमर्थ अंगों में नई चेतना दौड़ाने के लिये जल-चिकित्सा बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पेट में अधिकांश रोगों की जड़ होती है, इसलिए कटि स्नान द्वारा पेट के नीचे वाले हिस्से को उत्तेजित किया जाता है। इससे पेट के रोग आदि दूर होते हैं। गुप्त अंग में जो नाड़ियाँ हैं, वे शरीर के संपूर्ण अवयवों की नाड़ियों से संबंधित हैं। गुप्तेन्द्रिय पर शीतलता पहुँचाने से वहाँ जो प्रतिक्रिया होती है, उसका असर समस्त शरीर की नाड़ियों पर पड़ता है। फलस्वरूप अंग-प्रत्यंग में स्फूर्ति आती है। रीढ़ की हड्डी, मस्तिष्क और शरीर के संबंध में सूत्रों को जोड़ने वाली है। जहाँ जल की धारा या भीगे कपड़े की रगड़ पड़ने से मस्तिष्क को बहुत बल मिलता है। साथ-साथ नाड़ी समूह पर भी अच्छा असर पड़ता है। गीला चादर लपेटने की क्रिया समस्त शरीर में व्यापे हुए रोग के

लिए है। ज्वर, चेचक, रक्तविकार, दमा, क्षय, शोथ, खुजली आदि रोग में गीले चादरे का प्रयोग अच्छा रहता है। चोट, दर्द, फोड़ा, सूजन आदि के लिए उसी स्थान पर भीगा कपड़ा बाँधा जाता है, जहाँ कि कष्ट होता है।

गरम पानी से की जाने वाली वाष्प चिकित्सा का वर्णन इसी पुस्तक में दूसरी जगह दिया हुआ है। मिट्टी के साथ पानी मिलाकर, अग्नि के साथ पानी मिलाकर प्रयोग किया जाता है। केवल एक तत्त्व द्वारा पूर्ण रूप से चिकित्सा नहीं हो सकती, इसलिये दो-दो, तीन-तीन तत्त्वों के मिश्रण का भी उपयोग करना पड़ता है।

भीतरी अंगों को धोने के लिए भी जल काम में आता है। इसके तीन तरीके हैं—(१) पिचकारी द्वारा (२) छिद्रों द्वारा खींचकर (३) पात्र में भरे हुए जल में उस स्थान को धोकर।

(१) **छिद्रों द्वारा खींचकर**—नाक द्वारा पानी खींचकर उसे वापस लौटा देने या पेट तक पहुँचा देने की क्रिया को उष्णपान कहते हैं। यह क्रिया सबेरे करनी चाहिए, इससे जुकाम, सिर दर्द पीनस, नकसीर फूटना, निद्रानाश, उन्माद आदि सिर संबंधी रोग दूर होते हैं। योगी लोग गुदा और मूत्रेंद्रिय द्वारा पानी ऊपर खींचकर उन अंगों की सफाई करते हैं, पर यह सबके लिए सुगम नहीं है।

(२) **पिचकारी द्वारा**—गुदा मार्ग से एनिमा यंत्र द्वारा पेट में जल चढ़ाकर आंतों की सफाई की जाती है। इसकी विस्तृत विधि हमारी “बिना औषधि के कायाकल्प” पुस्तक में दी हुई है। इससे अधिकांश रोग शांत हो जाते हैं। सुजाक, पथरी, प्रदर, मूत्ररोग, मूत्राघात आदि रोगों में मूत्र मार्ग से पिचकारी द्वारा सफाई की जाती है। कान का दर्द, फुंसी, पीब बहना आदि के लिए भी पिचकारी से सफाई करनी पड़ती है।

(३) **पात्र में जल भरकर**—काँच के प्यालों में जल भरकर दुखती हुई आँखों को खोलकर उसमें डुबाया जाता है। गुलाबजल

से आँखें धोने पर आँखें ठंडी रहती हैं और मैल घुल जाता है। फोड़े और जख्म भी पानी से धोकर साफ किये जाते हैं। जल की शीतलता और पोषक शक्ति के द्वारा अनेक रोगों से अनायास ही छुटकारा मिल जाता है। जल से शरीर की शुद्धि होती है और उस शुद्धि में बीमारियों की अशुद्धियाँ भी दूर हो जाती हैं।

वायु चिकित्सा

तत्त्वों में वायु बहुत सूक्ष्म है। पृथ्वी, जल, अग्नि की अपेक्षा वायु की सूक्ष्मता अधिक है। इसलिए उसका गुण और प्रभाव भी अधिक है। अन्न और जल के बिना कुछ समय मनुष्य जीवित रह सकता है, पर वायु के बिना एक क्षण भर भी काम नहीं चल सकता। शरीर में अन्य तत्त्वों के विकार उतने खतरनाक नहीं होते जितने कि वायु के विकार। जिस स्थान पर वायु विकृत होगी, वही अंग तीव्र वेदना का अनुभव करेगा और अपनी सारी शक्ति खो बैठेगा। वायु प्राण है, इसलिए प्राण वायु पर जीवन की निर्भरता मानी जाती है। साँस रुक जाए या पेट फूल जाए तो मृत्यु को कुछ देर नहीं लगती। लोग वायु सेवन के लिए जरूरी काम छोड़कर समय निकालते हैं। जहाँ की हवा खराब हो जाती है, वहाँ नाना प्रकार की बीमारियाँ, महामारियाँ फैलती हैं इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति वहाँ रहना पसंद करते हैं, जहाँ की वायु अच्छी हो। प्राणायाम करने वाले जानते हैं कि विधिपूर्वक वायु साधन करने से उन्हें कितना लाभ होता है ? निस्संदेह वायु का स्वास्थ्य से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है और वायु के प्रयोग द्वारा अपनी बिगड़ी हुई तंदुरुस्ती को ठीक कर सकता है।

चिकित्सा जितनी स्थूल होती है, उतना ही कम प्रभाव डालती है। चूर्ण, चटनी, अवलेह आदि के रूप में ली हुई दवा पहले पेट में जाती है, वहाँ पचती है, तब रक्त बनकर समस्त शरीर में फैलती और अपना असर दिखाती है। यदि पाचन न हुआ तो वह दवा मल मार्ग से निकल जाती है और अपना असर नहीं दिखाती।

जिनकी पाचन शक्ति ठोस नहीं होती, उन्हें "पुस्टाई के पाक" कुछ भी फायदा नहीं करते, क्योंकि वे दवाएँ बिना पचे मल द्वारा बाहर निकल जाती हैं। ऐसी दशा में पतली पानी के रूप में तैयार हुई दवाएँ अधिक काम करती हैं, क्योंकि स्थूल आहार की अपेक्षा जल जल्दी पच जाता है। इंजेक्शन द्वारा खून में मिलाई हुई दवाएँ और भी जल्दी शरीर में फैल जाती हैं। हवा का नंबर इससे भी ऊँचा है, वायु द्वारा साँस के साथ शरीर में पहुँचाई हुई दवा बहुत जल्द असर करती है। जुकाम जैसे रोगों में सूँघने की दवाएँ दी जाती हैं। क्लोरोफार्म सुँघाने से जितनी जल्दी बेहोशी आती है, उतनी जल्दी उसे खाने से नहीं आ सकती।

इन सब बातों का ध्यान रखते हुए भारतीय ऋषि-मुनियों ने यज्ञ-हवन की बड़ी ही सुंदर वैज्ञानिक विधि का आविष्कार किया है। हवन में जलाई हुई औषधियाँ नष्ट नहीं होतीं, वरन् सूक्ष्म रूप धारण करके अनेक गुनी प्रभावशालिनी हो जाती हैं और अनेकों को आरोग्य प्रदान करती हैं। लाल मिर्च के एक टुकड़े को जब आग में डाला जाता है, तो वह सूक्ष्म होकर हवा में मिलकर चारों ओर फैलता है और दूर तक बैठे हुए लोगों को खाँसी आने लगती है। इससे प्रगट होता है कि जलने पर कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, वरन् सूक्ष्म होकर वायु में मिल जाती है और उस वायु के संपर्क में आने वालों पर उस वस्तु का असर पड़ता है। हवन के धार्मिक रूप को छोड़ दें तो भी अग्निहोत्र की रोग-निवारण संबंधी महत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है।

बाजार में कृमि-नाशक फिनाइल की भाँति की एक अंग्रेजी दवा फार्मेलिन बिकती है। इससे बीमारियों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। यह दवा फार्मिक आलडीहाइड (फार्मैल्डीहाइड) गैस से बनती है। फ्रांस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉक्टर ट्रिले ने बताया है कि उपरोक्त गैस लकड़ियाँ जलाने या खाँड़ जलाने से उत्पन्न होती है। जो काम बहुत कीमत खर्च करने पर फार्मेलिन जैसी दवाओं से होता है, वह कार्य अग्निहोत्र द्वारा अधिक उत्तमता से हो जाता

है। दवा तो वही असर करती है, जहाँ छिड़की जाती है, पर अग्निहोत्र द्वारा तो वह कार्य वायु द्वारा बड़े पैमाने पर हो जाता है।

फ्रांसीसी वैज्ञानिक टिलवर्ट की शोध है कि शक्कर जलाने से जो गैस उत्पन्न होती है, उससे हैजा, तपैदिक, चेचक आदि रोगों का विष दूर होता है। डॉक्टर हैफकिन का परीक्षण है कि घी जलाने से उत्पन्न होने वाली गैस चर्मरोग, रक्त विकार, शुष्कता, दाह एवं आंत्र रोग उत्पन्न करने वाले विष-कीटाणुओं को नष्ट करती है। डॉक्टर टाटलिट ने दाख के धुएँ को टाइफाइड और निमोनियाँ ज्वर को मिटाने वाला बताया है।

सूर्य के द्वारा पृथ्वी पर जो गर्मी आती है, उसे उपयुक्त मात्रा में कायम रखने के लिए कार्बनडायऑक्साइड गैस बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यह गैस हवा में करीब १—३३० होती है। यदि यह परिमाण थोड़ा भी घट-बढ़ जाता है, तो उसका पृथ्वी के मौसम पर बड़ा भारी असर पड़ता है। यदि यह परिमाण दूना हो जाए तो इतनी गर्मी बढ़ सकती है कि कहीं बर्फ के दर्शन भी न हों और यदि यह आधी रह जाए तो समस्त भूमंडल बर्फ से ढक जावे।

उपरोक्त गैस जहाँ ज्यादा बनती है, वहाँ आकाश में गर्मी ज्यादा बढ़ जाती है, फलस्वरूप वर्षा भी अधिक होती है। ज्वालामुखी पहाड़ों से यह वायु निकली है, इसलिए वहाँ वर्षा भी अधिक होती है और हरियाली छाई रहती है। फ्रांस के यूवरीन चश्मे से यह गैस निकलती है, फलस्वरूप वहाँ वर्षा और वनस्पति की अधिकता रहती है। हवन द्वारा भी यही कार्बनडायऑक्साइड गैस उत्पन्न होती है। जहाँ हवन अधिक होता है, वहाँ वर्षा और वनस्पति की अधिकता रहती है। फलस्वरूप वहाँ आबहवा भी स्वास्थ्यकारक होती है। गीता में भी ऐसा ही संकेत किया गया है।

हवन जहाँ एक धार्मिक कृत्य है, वहाँ वह मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने वाला भी है। यज्ञ में लोक

कल्याण के लिए समिष्टि आत्मा-परमात्मा की उपासना के लिए अपनी वस्तुओं का त्याग-समर्पण होम करने से परमार्थ, त्याग, उदारता एवं पवित्रता की मनोभावनायें उत्पन्न होती हैं। ऐसी भावनाओं का उदय होना अनेक प्रकार के मानसिक रोगों को निर्मूल करने के लिए सर्वश्रेष्ठ उपचार हैं। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन गैस बढ़ने से वर्षा की अधिकता द्वारा संसार की समृद्धि बढ़ती और आबहवा शुद्ध होती है। स्वस्थता प्रदान करने वाला और रोगनाशक औषधियाँ अग्नि की सहायता से सूक्ष्म रूप धारण करके शरीर में व्याप्त हो जाती है और निरोगता की स्थापना में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। फेफड़े और मस्तिष्क के रोगों के लिये तो हवन द्वारा पहुँची हुई औषधि मिश्रित वायु बहुत ही हितकर सिद्ध होती है। होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति के आविष्कार डालटन हनीमेन ने अपनी पुस्तक आर्गेनन आफ दी मेडीसन्स की १६०वीं धारा में औषधियाँ सूँघने की महत्ता को स्वीकार किया। ऐलोपैथिक डॉक्टर भी Kreosote और Eucalyptus Oil आदि का Inhalation बनाकर सूँघाते हैं। आयुर्वेद तो धूनी देने, धुम्रपान करने आदि के विधानों से भरा पड़ा है।

जिन स्थानों की आबहवा स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है, वहाँ की हवा में ओजोन नामक एक गैस पाई जाती है। यह एक प्रकार की तीव्र ऑक्सीजन है। यदि हवा में इसकी पच्चीस लाखवाँ भाग है, तो भी वहाँ की वायु बहुत उपयोगी होती है। हवन द्वारा ओजोन गैस उचित मात्रा में प्राप्त होती है। इस प्रकार साधारण स्थानों में भी शिमला, नैनीताल जैसी शुद्ध हवा घर बैठे मिल जाती है।

सोने का एक टुकड़ा यों ही किसी को खिला दिया जाए तो कुछ लाभ न होगा। किंतु उसी सोने को सूक्ष्म करके भस्म या वर्क बनाकर खिलाया जाए तो अधिक फायदा होगा। बादाम यों ही खाये जाएँ तो उनका लाभ न होगा, पर यदि उन्हें पत्थर पर पानी

में घिसकर खाया जाय तो अधिक लाभ होगा। कारण यह है कि किसी वस्तु को जितना सूक्ष्म बना लिया जाता है उतनी ही वह लाभदायक हो जाती है। औषधियों के बारे में भी यही बात है, पीपल का एक टुकड़ा यों ही खा लें तो उसकी कुछ विशेष उपयोगिता नहीं, परंतु चौसठ प्रहार लगातार घोटने के बाद जो 'चौसठ पहरा पीपल' बनती है, वह बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है। सूक्ष्मता से शक्ति उत्पन्न होती है। होम्योपैथी में सूक्ष्मता के अनुपात से ही पोटेंन्सी बढ़ती जाती है। यज्ञ द्वारा औषधियाँ सूक्ष्म होकर बहुत उपयोगी हो जाती हैं और तुरंत लाभ दिखाते हैं। जो पोषक पदार्थ हवन में जलाये जाते हैं, वे रोगी के शरीर में प्रवेश करके उसकी बलवृद्धि करते हैं। ग्लूकोज का एक छोटा इंजेक्शन एक सेर अंगूर खाने की अपेक्षा अधिक शक्तिवर्धक होता है। इसी प्रकार छटाँक भर घी खाने की अपेक्षा रोगी व्यक्ति उसके हवन द्वारा अधिक बल प्राप्त कर सकता है।

साधारणतः दैनिक कार्यक्रम में हवन को भी एक नित्य कर्म की तरह स्थान देना चाहिए। शास्त्रों ने नित्य पंचयज्ञ करने के लिए हर गृहस्थ को आदेश दिया है। पूजा-भजन के समय थोड़ा सा हवन नित्य कर लेना चाहिए। शास्त्रीय विधि व्यवस्था के अनुसार हवन विधि न मालूम हो तो गायत्री मंत्र या "ॐ भूर्भुवः स्वः" इन व्याहृतियों से जितनी सामर्थ्य हो उतनी घी और सामग्री लेकर हवन कर लेना चाहिए। समिधा की लकड़ी आम, पीपल, बड़, गूलर, छोंकर, बेल, ढाक आदि के पुराने पेड़ की खूब सूखी हुई लेनी चाहिए। चंदन, देवदारु सरीखी सुगंधित लकड़ियाँ भी थोड़ी-बहुत मिला ली जाएँ तो और भी अच्छा है। हवन-सामिग्री में निम्न वस्तुएँ होनी चाहिए—चंदन, इलायची, जायफल, जावित्री, केशर, गिलोय, अगर, तमर, असगंध, वंशलोचन, गूगल, लौंग, ब्राह्मी, पुनर्नवा, जीवंती, कचूर, छार, छबीली, शतावरि, खस, कपूर, कचरी, कमलगट्टा, शीतलचीनी, तासील पत्र, वच, नागकेशर, दालचीनी, रास्ना, आँवला, जटामांसी, इंद्र जौ, मुनक्का, छुहारा, नारियल की गिरी, चिरौजी, किशमिश, पिस्ता,

अखरोट। यह चीजें साधारणतः समान भाग होनी चाहिए, पर केशर, वंशलोचन जैसी अधिक महँगी चीजें आर्थिक कारणों से कम भी डाली जा सकती हैं। सामग्री नई, ताजी सूखी और साफ होनी चाहिए। सामग्री कूटकर उसमें तिल, जौ, चावल, उर्द, शकर और घी मिला लेना चाहिए। इस सामग्री का हवन करने से हवन के निकटस्थ लोगों को बलवर्धक, मानसिक शांतिदायक और रोगनाशक तत्त्व प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य की स्थिति उन्नत एवं संतोषजनक होने लगती है।

यदि किसी रोग विशेष की चिकित्सा के लिए हवन करना हो, तो उसमें उस रोग को दूर करने वाली ऐसी औषधियाँ सामग्री में और मिला लेनी चाहिए, जो हवन करने पर खाँसी न उत्पन्न करती हों। यह मिश्रण इस प्रकार हो सकता है—
 (१) साधारण बुखारों में—तुलसी की लकड़ी, तुलसी के बीज, चिरायता, करंजे की गिरी (२) विषम ज्वरों में—पाढ़ की जड़, नागरमौथा, लालचंदन, नीम की गुठली, अपामार्ग (३) जीर्ण ज्वरों में—केशर, काकड़ासिंगी, नेत्रबाला, त्रायमाण, खिरंटी, कूट, पोहकर मूल (४) चेचक में—वंशलोचन, धमासा, धनियाँ, श्योनाक, चौलाई की जड़, (५) खाँसी में—मुलहठी, अडूसा, काकड़ा सिंगी, इलायची, बहेड़ा, उन्नाव, कुलंजन (६) जुकाम में—अनार के बीज, दूब की जड़, गुलाब के फूल, पोस्त गुल बनफसा, (७) श्वास में—धाय के फूल, पोस्त के डौंडे, बबूल का वक्कल, मालकांगनी, बड़ी इलायची, (८) प्रमेह में—तालमखाना, मूसली, गोखरू बड़ा, शतावरि, सालममिश्री, लजवंती के बीज, (९) प्रदर में—अशोक की छाल, कमल केशर, मोचरस, सुपाड़ी माजूफल, (१०) वात व्याधियों में—सहजन की छाल, रास्ना, पुनर्नवा, धमासा, असगंध, विशरीकंद, मेंथी, (११) रक्तविकार में—मजीठ, हरड़ बावची, सरफोंका, जबासा, उसवा (१२) हैजा में—धनियाँ, कासनी, सौंफ, कपूर, चित्रक, (१३) अनिद्रा में—काकजंधा, पीपलामूल, भारंगी, (१४) उदर रोगों में—चव्य, चित्रक, तासील पत्र, दालचीनी, जीरा,

आलू, बुखारा, पीपर, (१५) दस्तों में—अतीस, बेलगिरी, ईसबगोल, मोचरस, मौलश्री की छाल, तालमखाना, छुहारा, (१६) पेचिश में—करोड़ फली, अनारदाना, पोदीना, आम की गुठली, कतीरा, (१७) मस्तिष्क संबंधी रोग में गोरखमुंडी शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बच, शतावरि (१८) दाँत के रोगों में—शीतलचीनी, अकरकरा, बबूल की छाल, इलायची, चमेली की जड़, (१९) नेत्र रोगों में—कपूर, लौंग, लालचंदन, रसोत, हल्दी, (२०) घावों में—पद्माख, दूब की जड़, बड़ की जटाएँ, तुलसी की जड़, तिल, नीम की गुठली, आमाहल्दी। (२१) बंध्यात्व में—शिवलिंगी के बीज, जटामांसी, कूट, शिलाजीत, नागरमौथा, पीपलवृक्ष के पके फल, गूलर के पके फल, बड़ वृक्ष के पके फल, भट कटाई। इसी प्रकार अन्य रोगों के लिये उन रोगों की निवारक औषधियाँ मिलाकर हवन-सामग्री तैयार कर लेनी चाहिए। इस संबंध में शांतिकुंज से पाठकगण जबानी या पत्र द्वारा सलाह ले सकते हैं।

स्वस्थ मनुष्य को अपनी तंदुरुस्ती कायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए नित्य गायत्री मंत्र के साथ हवन करना चाहिए। इससे आध्यात्मिक लाभ भी होता है। रोगी मनुष्य यदि चल-फिर सकता हो तो उसे आसन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए और स्वयं हवन करना चाहिए। यदि रोगी अशक्त हो तो उसे हवन के समीप मुलायम बिस्तर पर लिटा देना चाहिए। जिस कमरे में रोगी को रहना होता हो, उस कमरे की खिड़कियाँ खोलकर यदि हवन किया जाय तो बहुत अच्छा है। परंतु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कमरे में जरूरत से ज्यादा गैस भर जाने के कारण रोगी को कष्ट न हो। हवन की अग्नि प्रज्ज्वलित रहनी चाहिए। धुआँ सदा हानिकारक होता है, चाहे वह लकड़ी का हो या चाहे सामग्री का हो। जलती हुई अग्नि से ही औषधियों की सूक्ष्मता ठीक प्रकार होती है। घर में हवन की वायु के बस जाने से अनेक प्रकार के अस्वास्थ्यकर विकारों का निवारण हो जाता है।

हवन के समय हल्के, ढीले और कम वस्त्र पहनने चाहिए। यदि ऋतु अनुकूल हो तो नंगे ही बैठना चाहिए। जिससे कि यज्ञ की वायु शरीर को बाहर भी स्पर्श करे। स्नान करके बैठना सबसे अच्छा है, पर यदि स्थिति अनुकूल न हो तो हाथ-मुँह धोकर भी काम चल सकता है। यदि विधिवत् हवन न हो सके तो एक मिट्टी के सकोरे में लकड़ियाँ जलाकर उस पर घी और हवन-सामग्री डालकर रोगी के समीप रख देना चाहिए। एक तरीका यह भी हो सकता है कि सामग्री को कूटकर घी के साथ उसकी बत्ती-सी बना ली जाए और धूपबत्ती की तरह उसे जलने दिया जाए। हवन के लिए प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है। बिना विशेष आवश्यकता के रात्रि में हवन न करना चाहिए।

हवन के समीप जल का भरा हुआ एक पात्र रखना कभी न भूलना चाहिए। यदि बड़ा हवन हो तो हवन कुंड के चारों ओर पानी के भरे पात्र रख देने चाहिए। कारण यह कि हवन में जहाँ उपयोगी वायु निकलती है, वहाँ कार्बन सरीखी हानिकारक गैस भी निकलती है। पानी उस हानिकारक गैस को खींचकर अपने में चूस लेता है। इस पानी को सूर्य के सम्मुख अर्ध के रूप में फैला देने का विधान है। इस जल को पीने आदि के काम में न लाना चाहिए।

हवन के अतिरिक्त वायुचिकित्सा का दूसरा तरीका प्राणायाम है। हम अपनी "आसन और प्राणायाम" पुस्तक में इसका वर्णन कर चुके हैं। प्राणायाम के द्वारा अनेक कठिन रोगों के रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर चुके हैं। विशेष रोगों के लिए विशेष प्राणायाम भी हो सकते हैं। पर साधारण और सर्व रोगोपयोगी प्राणायाम यह है कि (१) खुली हवा में प्रातःकाल मेरुदंड सीधा कर पद्मासन से समतल भूमि पर एक छोटा आसन बिछाकर बैठे (२) फेफड़ों में जितनी हवा भरी हो, उस सबको धीरे-धीरे बाहर निकाल दें (३) जब फेफड़े बिल्कुल खाली हो जावें, तो धीरे-धीरे साँस खींचना आरंभ करें और जितनी वायु

छाती एवं पेट में भरी जा सके भर लें। (४) जितने सेकंड में हवा खींची गई हो, उसके एक तिहाई समय तक वायु को भीतर ही रोकें (५) अब धीरे-धीरे वायु को बाहर निकालना आरंभ करें और पेट को बिल्कुल खाली कर दें। (६) जितनी देर में हवा बाहर निकाली गई हो, उसके एक तिहाई समय तक बिना वायु के रहें (७) फिर पूर्ववत् वायु खींचना आरंभ कर दें—यह एक प्राणायाम हुआ। ऐसे प्राणायाम सामर्थ्य के अनुसार एक समय में १०-१५ या न्यूनाधिक किये जा सकते हैं। घंटे दो-दो घंटे के अंतर से यह प्राणायाम करते रहने चाहिए। साथ में "ॐ" का या गायत्री मंत्र का जप भी करते रहना चाहिए। जैसे आँधी आने से आकाश में वायु की शुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम से वायु की प्रचंड हलचल द्वारा भीतरी विकार उमड़कर साँस द्वारा बाहर निकल जाते हैं। फेफड़े, मस्तिष्क, हृदय, आमाशय, आँतें, पेड़ू और गुर्दे को इस प्राणायाम द्वारा बल मिलता है और आवश्यक व्यायाम हो जाता है। जिससे निर्बल अंगों में सबलता बढ़ती है और बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधरता है।

आकाश-चिकित्सा

पंचतत्त्वों में मिट्टी, पानी, हवा, आग के काम जिस प्रकार प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं वैसे आकाश का अस्तित्व अनुभव में नहीं आता, परंतु सच पूछा जाए तो इन सबकी अपेक्षा शक्तिसंपन्न, क्रियाशील और प्रभावकारी आकाश ही है। आकाश का अर्थ कोई 'हवा' समझते हैं, कोई 'बादल' या 'शून्य' समझते हैं, कोई कुछ समझते हैं। यथार्थ में आकाश एक ऐसा सूक्ष्म पदार्थ है, जो हर पीले और ठोस पदार्थ में न्यूनाधिक मात्रा में व्याप्त है। अंग्रेजी भाषा में इस तत्त्व को "ईथर" कहते हैं। रेडियो में जो दूर-दूर से शब्द ध्वनियाँ आती हैं, वे इस ईथर द्वारा ही आती हैं। वायु की चाल तो फी मिनट कुछ ही मील है। आँधी की चाल एक घंटे में बीस मील के करीब होती है। यदि यह शब्द वायु द्वारा आते तो

इंग्लैंड से हिंदुस्तान तक आने में हफ्तों लग जाते, फिर हवा का रुख उलटा होता, तब तो वे शब्द शायद आ ही न पाते। इसलिए ऐसा न समझना चाहिए कि बेतार का तार हवा द्वारा आता। यह आकाश (ईथर) द्वारा आता है। आकाश का गुण 'शब्द' माना गया है। जितने भी शब्द होते हैं, वे आकाश के कारण होते हैं। यदि आकाश न हो तो शंख-घंटा, घड़ियाल, तोप, बंदूक, मोटर किसी की आवाज न सुनाई पड़े, यहाँ तक कि कोई आपस में बातचीत भी न कर सके, किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकले।

शब्द के दो भेद हैं—(१) आवाज (२) विचार। आवाज की तरह विचार भी एक स्वतंत्र पदार्थ है। शब्द के परमाणुओं का आदान-प्रदान दुनिया में होते हुए हम नित्य देखते हैं। बातचीत द्वारा अपनी इच्छा, अनुभूति, भावना और स्थिति दूसरों को देते हैं, शब्दों के परमाणुओं को विशेष यंत्र द्वारा बिजली की शक्ति के साथ फेंकने से वे रेडियो यंत्रों द्वारा पृथ्वी के कोने-कोने में सुने जाते हैं।

विचार का भी ऐसा ही विज्ञान है। हमारे मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, वे एक प्रकार की विद्युत्-तरंगों की भाँति आकाश में फैल जाते हैं और कभी नष्ट नहीं होते। जैसे जगह-जगह से थोड़ी-थोड़ी भाप उड़कर बड़े-बड़े बादल जमा हो जाते हैं, उसी प्रकार एक प्रकार के विचार अपनी ही किस्म के अन्य अनेकों मस्तिष्कों में से निकले हुए विचार के साथ मिलकर अपना एक बड़ा रूप-बड़े बादल का सा रूप-बना लेते हैं और इधर-उधर उड़ते हैं।

इन विचार बादलों का यह स्वभाव होता है कि जहाँ अपनी समानता पाते हैं, वहीं दौड़ जाते हैं। जैसे एक कौवे के काँव-काँव करने पर अन्य अनेकों कौवे इधर-उधर से उड़कर वहीं आकर इकट्ठे हो जाते हैं, उसी प्रकार का वह विचार बादल भी अपनी जाति वाले के पास उड़कर क्षण भर में जा पहुँचते हैं। जैसे कोई आदमी एक समय क्रोध, आत्महत्या, धूर्तता, चोरी आदि के विचार

कर रहा हो, तो अनेकों व्यक्तियों द्वारा जो वैसे ही विचार भूतकाल या वर्तमान काल में किये गये हैं, उनके विचार बादल उस आदमी के पास आकर इकट्ठे हो जाते हैं। फलस्वरूप उसकी क्रोध आदि की प्रवृत्तियाँ और अधिक बढ़ जाती हैं और उस दिशा में उसे नई-नई तरकीबें सूझ पड़ती हैं। इसी प्रकार प्रेम, उत्साह, त्याग, परमार्थ, समय आदि के विचार करने पर अनेक सत्पुरुषों द्वारा किये हुए उसी प्रकार के विचार इकट्ठे हो जाते हैं और उस मार्ग में अधिक उत्साह प्राप्त होता है।

यदि कोई व्यक्ति अपने रोग को बहुत बढ़ा-चढ़ा माने, निराश हो जाए, मृत्यु या दुर्भाग्य की बात सोचे एवं भविष्य में अपने स्वास्थ्य के और अधिक बिगड़ जाने की आशंका किया करें, तो भूतकाल के ऐसे ही अनेक अनुत्साही, डरपोक तथा मृत्यु के मुख में जाने वाले लोगों के भयपूर्ण विचार इकट्ठे होकर उसके ऊपर चढ़ बैठते हैं। इस बोझ से रोगी घबरा जाता है और साधारण से रोग में ही मर जाता है। कई व्यक्ति भूतप्रेत से डरकर मर जाते हैं। एक आदमी ने “जहर” का लेबिल चिपकी हुई शीशी में से भूलवश दवा पी ली। दवा पीने के बाद उसकी दृष्टि शीशी पर गई, तो वह घबरा गया कि मैंने जहर पी लिया है। घबराहट के मारे वह थोड़ी ही देर में मर गया। बाद को तलाश हुई तो मालूम पड़ा कि शीशी पर लेबिल तो “जहर” का जरूर लगा था, पर वास्तव में उसमें साधारण दवा थी। मृतक के शरीर में एक बूँद भी जहर न मिला। वह घबराहट से मरा था। एक व्यक्ति के सामने से साँप निकला और उसी समय लकड़ी की खुरसट पैर में आ गई, उसने सोचा कि सचमुच मुझे साँप ने काट लिया है और थोड़ी ही देर में ही वह मर गया। डॉक्टरों ने लाश की जाँच की तो उन्हें राई भर भी कहीं जहर न मिला। उसका डर, भ्रम और विश्वास ही उसे मार डालने वाला जहर बन गया।

आकाश ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है कि, जाने या अनजाने में उसकी सही या गलत उपयोग करने से जीवन और मृत्यु की स्थिति क्षण भर में पैदा हो जाती है। कोई व्यक्ति अपने बीमार होने की कल्पना करता रहे, तो वह स्वस्थ होते हुए भी थोड़े दिन में बीमार पड़ जायेगा और यदि उसे मृत्यु की आशंका दृढ़ हो जाए, तो निश्चय समझिए किसी औषधि से उसकी जीवन रक्षा नहीं हो सकती। विचार बल द्वारा-आकाश का आह्वान करके लोग बीमारी और मृत्यु को बुला सकते हैं। **इसी प्रकार यदि कोई चाहे तो स्वस्थता और दीर्घ जीवन को भी आकाश द्वारा विचारबल की सहायता से प्राप्त कर लेगा।** अपने स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन और सुनहरी भविष्य की कल्पना करते रहने वाले लोग आमतौर पर स्वस्थ रहते हैं और यदि कभी परिस्थितिवश बीमार पड़ते भी हैं, तो बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

मनोविज्ञानशास्त्र के सूक्ष्मदर्शी आचार्यों ने बताया है कि, डरपोक बीमारी की अधिक कल्पना करने वाले, निराश, घबराहट, चिंता और आशंका की मनोवृत्ति वाले, आमतौर से अधिक बीमार पड़ते हैं और आये दिन अस्वस्थता का अनुभव करते हैं। इसके विपरीत जो लोगी साहसी प्रसन्नचित्त, निर्भय, मस्त तबियत के होते हैं, बीमारियाँ उनसे कोसों दूर रहती हैं। **स्वास्थ्य का आधा भाग अच्छे आहार-विहार के ऊपर और आधा भाग मानसिक स्थिति के ऊपर निर्भर रहता है।** अच्छे और ऊँचे विचार करने वाला कमजोर शरीर होते हुए भी आनंदित रहता है और तामसी, नीच, तुच्छ, घृणित, पापपूर्ण एवं भय, चिंता से भरे हुए विचार रखने वाला अपने हट्टे-कट्टे शरीर को भी गला सकता है।

शरीर के बाहरी और भीतरी हर एक अवयव के ऊपर मन का आधिपत्य है। मस्तिष्क के सूचना तंतु, जाल की तरह समस्त शरीर में फैले हुए हैं। देह के किसी भी भाग में कोई जरा सी भी घटना हो जाए, चींटी भी चढ़ जाए तो भी इन सूचना-तंतुओं द्वारा मस्तिष्क को तुरंत ही खबर मिलती है और फिर मन क्षण भर में

हाथ को आज्ञा कर देता है कि, इस चींटी को हटा दो, फौरन वहाँ पहुँचकर आज्ञा का पालन शुरू कर देता है। यदि क्लोरोफार्म सुँघाकर मस्तिष्क को बेहोश कर दिया जाए, तो चाहे देह को कहीं से काट डालिए, पर कुछ भी खबर न पड़ेगी। इससे सिद्ध होता है कि, शरीर की गतिविधि मन के ऊपर निर्भर है। रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास आदि अनैच्छिक कार्य भी मन के ऊपर निर्भर हैं। कई मनस्वी व्यक्ति अपनी इच्छाशक्ति की सहायता से नाड़ी का चलना बंद कर देते हैं। समाधि लगने पर श्वास-प्रश्वास क्रिया और हृदय की धड़कन बंद हो जाती है।

मन जड़ है और शरीर उसका पेड़ है। गीता ने “ऊर्ध्वमूल-मधः शाखा” श्लोक में यही बताया है कि, शरीर रूपी वृक्ष की जड़ मस्तिष्क में है। मन के अनुरूप शरीर बन जाता है। भावोद्वेग के चिह्न शरीर पर तुरंत ही प्रकट हो जाते हैं। जैसी विचारधारा होती है उसी के अनुसार बाह्य आकृति एवं स्वास्थ्य की अतिरिक्त स्थिति का निर्माण होने लगता है। दुर्भाव रखने वाला व्यक्ति शीघ्र ही अपने स्वास्थ्य को गिरा लेता है और सद्भावों के कारण वह सुखी, स्वस्थ एवं शांतिमय जीवन बिताता है।

जो लोग निरोगता चाहते हैं। स्वास्थ्य को कायम रखने के एवं बीमारी से पीछा छुड़ाने के इच्छुक हैं, उन्हें चाहिए कि अपने मन के नीचे न गिरने दें, वरन् ऊँचा उठाएँ रहें। पाप, वासना, गंदगी, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, चिंता कुविचारों को छोड़कर आशा, उत्साह, पुरुषार्थ, साहस, दृढ़ता, प्रेम, पवित्रता एवं सद्भावनों से अपने को ओत-प्रोत रखें। जब किसी रोग का सामना करना पड़े, तो उसे एक तुच्छ सा शत्रु समझकर ऐसा विश्वास रखें कि, इसे बहुत शीघ्र मार भगाया जायेगा। जब स्वस्थ हो तो विश्वास रखें कि, ऐसी ही उत्तम स्थिति जीवन भर बनी रहेगी। इस प्रकार के विचार स्वास्थ्य को ठीक रखने में अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण सहायता देते हैं। चिकित्सा में भी यही बात है, जिस चिकित्सक या जिस औषधि पर विश्वास होता है, उनसे बड़ा लाभ होता है। जिस

चिकित्सक के दवा पर विश्वास न हो, उसके कितने ही उत्तम होने पर भी कुछ लाभ नहीं होता।

आशा, उत्साह, विश्वास एवं सौभाग्य पर विश्वास करने से गिरा हुआ स्वास्थ्य बहुत जल्दी फिर प्राप्त हो सकता है और साधारण स्वास्थ्य दिन-दिन उन्नति के मार्ग पर बढ़ता जाता है। इसलिए पाठकों को चाहिए कि अपनी चिकित्सा-परिचर्या एवं आहार-विहार की उत्तमता एवं शीघ्र ही उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति पर विश्वास करें। इससे उनको अपना गिरा हुआ स्वास्थ्य सँभालने में आशातीत सफलता मिलेगी।

प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल एकांत स्थान पर शांत चित्त होकर, नेत्र बंद करके बैठ जाइए। शरीर को शिथिल कर दीजिए। सब ओर से विचारों को हटाकर निम्न भावना मंत्र पर चित्त को एकाग्र कीजिए। दृढ़ता से इस भावना मंत्र पर मन को लगाइए। आपके स्वास्थ्य को सुधार की दशा में आश्चर्यजनक प्रगति होगी।

“भावना मंत्र”

“मेरे रक्त का रंग खूब लाल है। यह मेरे उत्तम स्वास्थ्य का द्योतक है। उसमें अपूर्व ताजापन है। उसमें कोई विजातीय तत्त्व नहीं है। शरीर के अणु-अणु से जीवन की रश्मियाँ निकल रही हैं। मेरा शरीर सुडौल है। अब मैं और अधिक सुडौल बन रहा हूँ। मेरे नेत्रों द्वारा मेरी तेजस्विता एवं सामर्थ्य प्रकाशित होती है। मेरे फेफड़े बलवान् हैं। मैं गहरा साँस लेता हूँ। साँस द्वारा प्राणतत्त्व अपने खींचा करता हूँ। मुझे किसी प्रकार का रोग नहीं है। मैं स्वास्थ्य में दिन-दिन वृद्धि होती हुई प्रत्यक्षरूप से देखता हूँ। मेरा अंग-अंग मजबूत है। मैं शक्तिशाली हूँ। आरोग्य-रक्षिणी शक्ति मेरे रक्त के अंदर प्रचुर मात्रा में मौजूद है।”

“मैं शुद्ध आत्म तेज को अपने में धारण कर रहा हूँ। अपनी शक्तियों की वृद्धि करना मेरा प्रधान लक्ष्य है। मैं अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करूँगा, स्वस्थ बनूँगा, ऊँचा उठूँगा। समस्त बीमारी

और कमजोरियों को परास्त करके छोड़ूँगा। मेरी गुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठी हैं।”

“अब मैं एक बलवान् शक्ति पिंड हूँ। अब मैं जीवनतत्त्वों का भंडार हूँ। अब मैं स्वस्थ बलवान् और प्रसन्न हूँ।”

पंचतत्त्वों की दैनिक साधना

पंचतत्त्वों की महत्ता को देखते हुए दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार का रखना चाहिए कि सभी तत्त्व आवश्यक मात्रा में उचित रूप से प्राप्त होते रहें। कुछ ऐसे अभ्यास नीचे बताये जाते हैं, जिनके द्वारा तत्त्वों को उचित मात्रा में प्राप्त करके मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

पृथ्वी तत्त्व—प्रातःकाल नंगे पैर टहलने के लिये कोई स्वच्छ स्थान तलाश करना चाहिए, हरी घास भी वहाँ हो तो और अच्छा। घास की तरावट से पैर ठंडे होते हैं, यह ठंडक मस्तिष्क तक पहुँचती है। किसी पार्क, बगीचे, खेत या अन्य ऐसे ही किसी साफ स्थान में प्रतिदिन नंगे पावों कम से कम आधा घंटा नित्य टहलना चाहिए। इससे पैरों के द्वारा शरीर से विष खिंचकर जमीन में चले जाते हैं, और बाह्य मुहूर्त में जो अनेक आश्चर्यजनक गुणों से युक्त वायु पृथ्वी में से निकलती है, उसको शरीर सोख लेता है। प्रातःकाल के समय जैसा यह लाभ और किसी समय प्राप्त नहीं होता। टहलते समय यह भावना करते चलना चाहिए कि—“पृथ्वी की जीवनी शक्ति को मैं पैरों द्वारा खींचकर अपने शरीर में भर रहा हूँ और मेरे शरीर के विषों को खींचकर पृथ्वी मुझे निर्मल बना रही है।” यह भावना जितनी ही बलवती होगी, उतना ही लाभ अधिक होगा।

हफ्ते में एक-दो बार स्वच्छ-भुरभुरी पीली मिट्टी या शुद्ध बालू लेकर उसे पानी से गीली करके शरीर पर साबुन की तरह मलना चाहिए। कुछ देर तक उस मिट्टी को शरीर पर लगा रहने देना चाहिए और बाद में स्वच्छ पानी से स्नान करके मिट्टी को

पूरी तरह से छुड़ा देना चाहिए। इस मृत्तिका स्नान से शरीर के भीतरी और चमड़े के विष खिंच जाते हैं और त्वचा कोमल एवं चमकदार हो जाती है। सिर के बाल को मुल्लानी मिट्टी से धोना मस्तिष्क के लिए लाभदायक है। चूल्हे की जली हुई मिट्टी से दाँत साफ करना ठीक रहता है।

जल तत्त्व—नित्य ताजे पानी से स्नान करना चाहिए। मुरझाई हुई चीजें पानी पड़ने से हरी हो जाती हैं, शरीर को भी स्नान से सजीवता और चैतन्यता मिलती है। मैल साफ करना ही स्नान का उद्देश्य नहीं है, वरन् जल में मिली हुई विद्युत्, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और बहुमूल्य तत्त्वों द्वारा शरीर को सींचना भी है।

सबरे शौच जाने से बीस-पच्चीस मिनट पूर्व एक गिलास पानी पिया जाए तो दस्त साफ होता है। कुल्ला एवं गरारे करने से मुख और गले की शुद्धि होती है। नाक से पानी खींचने से मस्तिष्क ठंडा रहता है। कभी-कभी एनीमा की सहायता से पेट में पानी चढ़ाकर आंतों को धो डालना चाहिए।

जब भी आपको पानी पीने की आवश्यकता पड़े, दूध की तरह घूँट-घूँट कर पानी पिँ। चाहे कैसी ही प्यास लग रही हो, पानी को एकदम गटागट नहीं पीना चाहिए। हर एक घूँट के साथ यह भावना करते जाना चाहिए—“इस अमृत तुल्य जल में जो शीतलता, मधुरता और शक्ति भरी हुई है, उसे खींचकर मैं अपने शरीर में धारण कर रहा हूँ।” इस भावना के साथ पिया हुआ पानी दूध के समान गुणकारक होता है।

अग्नि तत्त्व—सूर्य के प्रकाश के अधिक संपर्क में रहने का प्रयत्न करना चाहिए। मकान के भीतरी भाग में भी धूल पहुँचती रहे, ऐसी खिड़कियों की व्यवस्था करनी चाहिए। कपड़ों को रोज धूप लगानी चाहिए। सबरे की धूप नंगे बदन पर लेने का अवसर निकालना चाहिए। धूप के संपर्क में रहने वाले निरोग और स्वस्थ

रहते हैं। गर्मी की दोपहरी की तेज धूप को छोड़कर सत्य धूप को शरीर पर पड़ना सदा लाभदायक रहता है।

स्नान करके गीले शरीर से प्रातःकालीन सूर्य के दर्शन करने और उन्हें अर्घ चढ़ाने का नियम बड़ा अच्छा है। पानी में बिजली को खींचने की बड़ी ताकत है। वर्षाऋतु में बिजली के तारों में बड़ी तेजी रहती है। बादलों के कारण आकाश में बिजली चमकती है। पानी में बिजली की शक्ति को खींचने की विशेष शक्ति है। इसलिए स्नान के बाद शरीर को तौलिया से पोंछने के बाद नम शरीर से-नंगे बदन-सूर्यनारायण के सामने जाकर अर्घ देना चाहिए। नदी, तालाब या नहर आदि में स्नान करना हो, तो कमर तक जल में खड़े होकर अर्घ देना चाहिए। सूर्य दर्शन के पश्चात् नेत्र बंद करके उनका ध्यान करना चाहिए और मन ही मन यह भावना दुहरानी चाहिए कि—“भगवान् सूर्य नारायण का तेज मेरे शरीर में प्रवेश करके रोम-रोम को दीप्तिमान्, सतेज और प्रफुल्लित कर रहा है और मेरे अंग-प्रत्यंगों में स्फूर्ति एवं शक्ति पैदा हो रही है।” स्नान के बाद इस क्रिया को नित्य करना चाहिए।

वायु तत्त्व—स्नान करने के उपरांत किसी एकांत स्थान में जाइए। समतल भूमि पर आसन बिछाकर पद्मासन से बैठ जाइए। मेरुदंड बिल्कुल सीधा रहे। नेत्रों को अधखुला रखिए। अब धीरे-धीरे नाक द्वारा साँस खींचना आरंभ कीजिए और दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ भावना कीजिए कि—“विश्वव्यापी महान् प्राण भंडार में से मैं स्वास्थ्यदायक प्राणतत्त्व साँस के साथ खींच रहा हूँ और वह प्राण मेरे रक्त के साथ समस्त नाड़ी-तंतुओं में प्रवाहित होता हुआ सूर्यचक्र में (आमाशय का वह स्थान जहाँ पसलियाँ और पेट मिलते हैं) इकट्ठा हो रहा है।” इस भावना को ध्यान द्वारा चित्रवत् मूर्तिमान् रूप से देखने का प्रयत्न करना चाहिए। जब फेफड़ों को वायु से अच्छी तरह भर लें, तो दस सेकंड तक वायु को भीतर रोके रहें। इस रोकने (कुंभक) के समय में ऐसा ध्यान करना चाहिए कि—“खींचा हुआ प्राणतत्त्व

मेरे रोम-रोम में समा गया है।" अब वायु को नासिका द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकालें और निकालते समय ऐसा अनुभव करें कि—“शरीर के सारे दोष रोग और विष साँस के साथ निकाल बाहर किये जा रहे हैं।”

इस प्रकार से आरंभ में दस प्राणायाम करने चाहिए, फिर धीरे-धीरे बढ़ाकर सुविधानुसार आध घंटे तक कई बार प्राणायामों को किया जा सकता है। अभ्यास पूरा करने के उपरांत आपको ऐसा अनुभव होगा कि, रक्त की गति तीव्र हो गई है और सारे शरीर की नाड़ियों में एक प्रकार की स्फूर्ति ताजगी और विद्युत् शक्ति दौड़ रही है। इस प्राणायाम को कुछ दिन लगातार करने से अनेक शारीरिक और मानसिक लाभों का स्वयं अनुभव होता है।

वायु की सहायता से उत्तमोत्तम औषधियों का सूक्ष्म किया हुआ सारतत्त्व ग्रहण करने के लिए, घर की आबहवा शुद्ध रखने के लिए और लोक कल्याण के लिए थोड़ा बहुत हवन नित्य करना चाहिए। अधिक न हो सके तो धूपबत्ती या अगरबत्ती जलाकर ही रखनी चाहिए। इससे भी लाभ होता है। शुद्ध वायु के स्थानों और घरों में रहना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। साँस मुँह से नहीं, बल्कि सदा नाक द्वारा ही लेनी चाहिए। कपड़े से मुँह ढककर कभी नहीं सोना चाहिए।

आकाश तत्त्व—आकाश तत्त्व में से लाभदायक सद्विचारों को आकर्षित करने के लिए प्राणायाम के बाद का समय ठीक है। एकांत स्थान में किसी नरम बिछौने पर, आराम कुर्सी पर अथवा मसंद, दीवार या पेड़ का सहारा लेकर शरीर को बिल्कुल ढीला कर दे। नेत्रों को बंद करके अपने चारों ओर नीले आकाश का ध्यान करो। नीले रंग का ध्यान करना मन को बड़ी शांति प्रदान करता है। जब नीले रंग का ध्यान ठीक हो जाए, तब ऐसी भावना करनी चाहिए कि—“निखिल नील आकाश में फैले हुए, सद्विचार, सद्विश्वास, सत्प्रभाव चारों ओर से एकत्रित होकर मेरे शरीर में

विद्युत् किरणों की भाँति प्रवेश कर रहे हैं और उनके प्रभाव से मेरा अंतःकरण दया, प्रेम, परोपकार, कर्तव्यपरायणता, सेवा, सदाचार, शांति, विनय, गंभीरता, प्रसन्नता उत्साह, साहस, दृढ़ता, विवेक आदि सद्गुणों से भर रहा है।” यह भावना खूब मजबूती और दिलचस्पी के साथ मनोयोग तथा श्रद्धापूर्वक होनी चाहिए। जितनी ही एकाग्रता और श्रद्धा होगी उतना ही उससे लाभ होगा।

आकाश तत्त्व की इस साधन के फलस्वरूप अनेक सिद्ध महात्मा, सत्पुरुष, अवतार तथा देवताओं की शक्तियाँ आकर साधक पर अपना प्रभाव डालती हैं और मानसिक दुर्गुणों को दूर कर श्रेष्ठतम सद्भावनाओं के बीज जमाती है। सद्भावों के द्वारा ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रह सकता है, यह एक सुनिश्चित तथ्य है।

इन पाँचों तत्त्वों की सरल साधनाओं को यदि दैनिक जीवन में नियत और नियमित स्थान दिया जाए तो निस्संदेह स्वास्थ्य सदा ठीक रह सकता है और बिगड़ी हुई तंदुरुस्ती ठीक हो सकती है।

पंचतत्त्व चिकित्सा का समन्वय

इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों पर पाँचों तत्त्वों से रोगों के चिकित्सा करने का उपचार पृथक्-पृथक् लिखे हैं। इस विधि का उपयोग करने वालों को पाँचों तत्त्वों से सम्मिलित लाभ उठाना चाहिए। आकाश द्वारा विचार और विश्वास द्वारा स्वस्थता और निरोगता की भावनाएँ दृढ़ करना हर एक रोगी के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार वायु द्वारा निरोगता के लिए हवन का उपयोग नित्य करना चाहिए। अग्नि तत्त्व और जल तत्त्व का मिश्रण करके इलाज करना ठीक है। गरम पानी का सेंक, भाप का प्रयोग संपूर्ण शरीर पर, छाती और पेट पर अथवा पीड़ित स्थान पर स्थिति के अनुसार करना चाहिए। इस प्रकार गरम पानी का सेंक करने के उपरांत मिट्टी की पट्टी बाँध देनी

चाहिए। यह चिकित्सा विधि आमतौर से सभी बीमारियों को दूर करने वाली है।

तौलिये से शरीर को रगड़कर किया जाने वाला घर्षण स्नान, जल स्नान, टब स्नान यह सब महत्त्वपूर्ण हैं। धूप में रोगी को लिटाकर किया जाने वाला सूर्य स्नान भी बहुत उपयोगी रहता है। पेट की एनीमा द्वारा सफाई कर डालना रोगों की जड़ को काटने के समान है।

प्रकृति के प्रभावों से, तत्त्वों के संपर्क से डरना नहीं चाहिए। जरा सी सर्दी से गर्मी से, घबराने या भागने की जरूरत नहीं है। शरीर पंच तत्त्वों का बना हुआ है। तत्त्वों से उचित मात्रा में संपर्क कायम रखने से आरोग्य की उन्नति होती है, अवनति नहीं।

